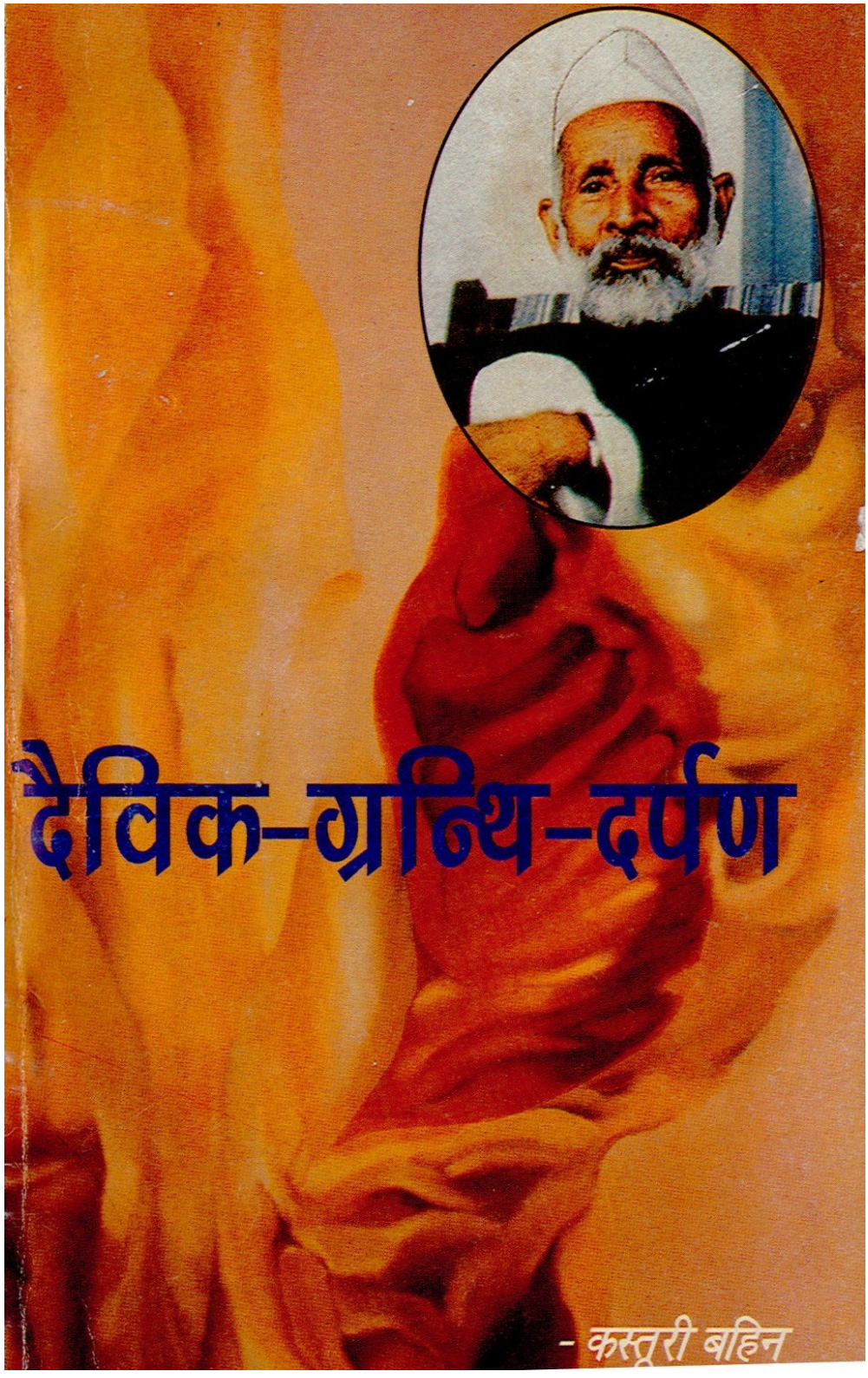

दैविक-ग्रन्थि-दर्पण

- कस्तूरी बहिन

दैविक-ग्रन्थि-दर्पण

लेखिका
कस्तूरी बहिन

प्रकाशक : श्री जी.डी. चतुर्वेदी
सी.-830-ए, महानगर,
एच. रोड.लखनऊ

प्रथम संस्करण : अप्रैल, 1999
500 प्रतियाँ

मूल्य : चालीस रुपये

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक : एन्टेक्स प्रिंटर्स
10-ए, बटलर रोड, डालीबाग, लखनऊ।
फोन: (0522) 207920, 208624

विषय-सूची

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	प्रस्तावना	1
2.	समर्पण	3
3.	दो शब्द	4
4.	प्रथम ग्रन्थि	6
5.	द्वितीय ग्रन्थि	10
6.	तृतीय-ग्रन्थि	12
7.	चतुर्थ ग्रन्थि	15
8.	पंचम् ग्रन्थि	18
9.	षष्ठम् ग्रन्थि	22
10.	सप्तम् ग्रन्थि	24
11.	अष्टम् ग्रन्थि	28
12.	नवम् ग्रन्थि	31
13.	दशम् ग्रन्थि	33
14.	एकादश ग्रन्थि	36
15.	द्वादश ग्रन्थि	39
16.	त्रयोदश ग्रन्थि	42
17.	उपसंहार-अनन्त दर्शन	46
18.	प्रश्नोत्तर (कस्तूरी बहिन द्वारा)	48
19.	श्री बाबूजी महाराज का जन्म शताब्दी-वर्ष-गीत	52

प्रस्तावना

ग्रन्थियों का विवरण देने से पहले हमारे लिये यह जानना आवश्यक है कि आखिर ग्रन्थि क्या है। मैं अब तक जिसे ग्रन्थि समझती रही हूँ पहले उसके विषय में ही कुछ लिखने का प्रयास है। ग्रन्थि क्या है और इसके पड़ने का कारण क्या है? मुख्यत: ग्रन्थि तो जड़ और चेतन के मध्य की है। शरीर जड़ है और ईश्वर जो इसके अंतर में विद्यमान है, चेतन है, यह आदि-सत्य है। कालान्तर के प्रभाव से क्रमश: अहं के कारण जब हम इस असत्य को सत्य मानने लगते हैं कि मैं शरीर हूँ तो मानों हम अंतर के चेतन को पीठ देना आरम्भ कर देते हैं। क्रमश: जन्म-जन्मान्तरों के चक्कर में पड़ते हुये हमारा समूचा अस्तित्व अहं की झूठी अवस्था के कारण हमें शरीर ही मालूम पड़ने लगता है अर्थात् 'मैं हूँ' के संकेत का आधार मात्र शरीर ही हो जाता है। बुद्धि की ऐसी जड़ता के कारण हमारे और चेतन अर्थात् ईश्वर के मध्य पेचीदगियों का चक्कर लगने लगता है और हम, उन पेचीदगियों में उलझते ही चले जाते हैं। 'श्री बाबूजी महाराज' के कथनानुसार मनुष्य की हस्ती (असलियत) पर आवरण पड़ते जाते हैं और उसकी हस्ती गिलाफ़-दर-गिलाफ़ के अंदर छुप जाती है। तभी से मानव-बुद्धि का संचालन उसकी वास्तविक हस्ती के द्वारा नहीं वरन् उस पर पड़े आवरण द्वारा ही क्रियान्वित होता रहता है। क्रमश: भौतिकता में उलझ जाने के कारण हमें असलियत की याद ही नहीं आती है और हमारी रहनी एवं बुद्धि असलियत से बहुत दूर हो जाती है। झूठे अहं के कारण अंतर में विद्यमान ईश्वर की याद ही भूल जाती है। अहं हमारे लिये इसीलिये बँधन अर्थात् ग्रन्थि बन गया क्योंकि हम जो नहीं हैं उसे ही 'हैं' मान बैठे हैं। वास्तव में शरीर हमारे वास्तविक अस्तित्व (ईश्वर-अंश) के मात्र टिकने का स्थान है, रहनी तो हमारी ईश्वर में ही होनी चाहिए।

प्रश्न यह उठ सकता है कि आख़िर ईश्वरत्व की याद हमें क्यों भूल जाती है? उत्तर मात्र यही है कि जब तक हम ईश्वरीय-प्रकाश को ग्रहण करते रहते हैं तब तक याद का रिश्ता बना रहता है। जैसे-जैसे वृत्ति अधोमुखी होती जाती है हम स्वयं के वास्तविक अस्तित्व (ईश्वर-अंश) को भी भूल की भुलैया में खो बैठते हैं।

यह सत्य तो अनन्त-काल से प्रत्यक्ष है कि युग जब करवट लेना चाहता है तभी किसी महत् शक्ति का प्रादुर्भाव पृथ्वी पर होता है। ईश्वर को भुलाये हुये

मानव को पुनः याद दिलाने के लिये ही युग में 'श्री बाबूजी' जैसी दिव्य विभूति का पृथ्वी पर प्रादुर्भाव हुआ है। सहज-मार्ग साधना में अपनी इच्छा-शक्ति द्वारा मानव के अंतर में उनकी प्राणाहुति-शक्ति का प्रवाह ईश्वर-प्राप्ति के प्रति मानव-चेतना को चेतन कर देता है। ईश्वर के प्रति अपने भूले रिश्ते की याद मनुष्य को पुनः ईश्वर के साक्षात्कार के प्रति सजग कर देती है। श्री बाबूजी की इच्छा-शक्ति द्वारा हमारे अंतर में ईश्वरीय-धारा का प्रवाह हमारे ध्यान को ईश्वरीय दिशा प्रदान करके आज युग को, आध्यात्मिक-युग की मान्यता देने के लिये नव-युग का निर्माण भी कर रही है। यह दैविक-चमत्कार ही है कि एक ओर तो निज की दैविक खोज में उन्होंने मानव-अहं को सोलह-वृत्तों में कैद करके इन वृत्तों को तोड़ पाने की क्षमता का परिचय दिया है, दूसरी ओर अपने दैविक-अन्वेषण के द्वारा दिव्य ईश्वरीय गतियों को तेरह ग्रन्थियों में समाहित करके, ईश्वरीय-शक्ति पर अपने आधिपत्य का भी उन्होंने खासा परिचय दिया है। मानव के आत्मिक-कल्याण हेतु उसके लघु एवं सीमित काल में आध्यात्मिक-उन्नति की चरम सीमा प्रदान करने के लिये कुल ईश्वरीय-गतियों को समस्त अभ्यासियों में उतार पाने के लिये आज वे पूर्ण सक्षम हैं। इतना ही नहीं प्राणी-मात्र को भूमा अर्थात् Ultimate तक भी पहुँचाने का नेह-निमंत्रण देकर उन्होंने युग के समक्ष मानों भूमा के वैभव को भी स्पष्ट कर दिया है। भाई, स्पष्ट तो यह भी हो गया है कि यह लाला के लाल ही नहीं वरन् भूमा अर्थात् आदि-शक्ति के प्रतिनिधि भी हैं।

समर्पण

इस पुस्तक ''दैविक ग्रन्थि दर्पण'' को समर्पित करते समय न जाने क्यों आज मेरा मस्तक स्वयं ही अपने पूज्य पिताजी 'श्री राम दास चतुर्वेदी एवं पितृ-तुल्य मास्टर ईश्वर सहायजी के सामने नत हो गया है। पिताजी, जो हमें श्री बाबूजी महाराज के चरणों में लाये थे और श्री मास्टर ईश्वर सहाय जी जिन्होंने मिशन के श्रेष्ठ-प्रशिक्षक के रूप में हमें निरंतर श्री बाबूजी की चर्चा का परमानन्द प्रदान किया एवं दैविक-ईश्वरीय-धारा अर्थात् Transmission का हमारे हृदयों में (प्रसारण) प्रवाह भी प्रदान किया। उन्होंने हमें ऐसा सौभाग्य प्रदान किया है कि हमारे जीवन धन्य हो गये हैं।

श्री बाबूजी के कथनानुसार ब्रम्ह में फैलने और मनन करने की शक्ति मौजूद है, जबकि पारब्रह्माण्ड-मंडल में चंचलता तथा निश्चलता दोनों ही गायब हो जाती है अर्थात् मनन करने और फैलने की दोनों ही शक्ति अंतर्धान हो जाती है। भौतिकता का आधिक्य होते जाने पर मनुष्य का वास्तविक सौंदर्य आवरण में छुप जाता है तब आवरण के अंदर विचार-शक्ति के स्पंदन द्वारा पेचीदगियाँ उत्पन्न हो जाती है जो जड़ और चेतन के मध्य ग्रन्थि बन जाती है। सहज-मार्ग साधना में श्री बाबूजी द्वारा निरंतर ईश्वरीय-धारा का प्रवाह पाकर क्रमशः यह पेचीदगियाँ समाप्त होने लगती हैं और ग्रन्थियों का मंथन शुरू हो जाता है। अब मैंने यह भेद जाना कि इस स्थिति में उपरोक्त दोनों मंडल की ख़बर भी मिलती है और क्रमशः उस शक्ति का प्रवेश भी स्वयं में उतरता है। तभी मानव अपनी वास्तविक सूरत देख पाता है अथवा यों कहिये कि Self Realization की यही हालत है।

ऐसी दिव्य-विभूति का दिव्य-स्पर्श पाकर यह पुस्तक ''दैविक-ग्रन्थि दर्पण'' आज परम सौभाग्यशाली आ. मास्टर ईश्वर सहायजी को ही समर्पित है जिनका नाम अपनी बहुमुखी प्रतिभा के सहित हमारे श्रीबाबूजी की सेवा एवं 'श्री रामचंद्र मिशन' की निःस्वार्थ सेवा के लिये अपनी उज्जवलता को सदैव क़ायम रखेगा।

दो शब्द

कदाचित् अपने अर्थ की सरलता को पाने के लिये ही आज यह प्रश्न मेरे समक्ष में उभर आया है कि आख़िर ग्रन्थियों का निर्माण क्यों और कैसे हुआ? देखने पर यह पता मिल रहा है कि ये ग्रन्थियाँ आध्यात्मिक-श्रेष्ठ-गतियों एवं दैविक शक्ति से सम्बद्ध है, भौतिकता से नहीं। श्रीबाबूजी की दैविक-पुस्तक ''अनन्त की ओर'' में वर्णित तेरह ग्रन्थियों के वर्णन का जो दर्शन इस पुस्तक ''दैविक-ग्रन्थि-दर्पण'' के लेखन हेतु वे मुझे दे रहे हैं उसके आधार पर ही इस दर्शन को पूर्णरीत्या इस लेखन में उतार पाने का ही मेरा प्रयास है।

ऐसा लगता है कि रचना के हेतु जो शक्ति उद्‌गम से प्रवाहित हुई, उसने जब रूख़ पलटा और क्रियात्मक-रूप लिया तो उस अनन्त-शक्ति के घनत्व में क्रमशः कमी होते जाने के कारण नीचे उतरने में झटके लगते गये-फलस्वरूप ग्रन्थियाँ बनती गईं और तेरह ग्रन्थियों का सहज निर्माण हुआ। दिव्य-शक्ति के उतरने में जितने ठहराव आये उतनी ही ग्रन्थियों का निर्माण हुआ। यही कारण है कि हर ठहराव के स्थान पर वहाँ की जो दशा थी एवं जैसा समां था एवं दिव्य-शक्ति के घनत्व का जितना एवं जैसा दबाव था उसका प्रवेश ग्रन्थियों में होता गया। मुझे लगता है कि श्रीबाबूजी ने सहज मार्ग साधना में अभ्यासी को उसके जीवन काल में ही अन्तिम सत्य अर्थात् Ultimate तक की यात्रा प्रदान करने के हेतु ही अपने दिव्य शोध-कार्य में इन तेरह ग्रन्थियों की खोज करके यात्रा को और भी सरल एवं सरस बनाने के साथ ही अभ्यासी को इसकी शक्ति पर स्वामित्व प्रदान करने की भी ठान ली है। मैं देख रही हूँ कि आध्यात्मिक-क्षेत्र में ग्रन्थियों के अंतर्गत बाबूजी ने ब्रम्ह-विद्या की पराकाष्ठा का ही परिचय दिया है। इतना ही नहीं अपनी ''अनन्त की ओर'' पुस्तक का अनमोल दिव्य रत्न प्रदान करके उन्होंने प्राणीमात्र के हित अपना यह दिव्य-संदेश दिया है कि सहज-मार्ग-साधना में उनकी दैविक इच्छा-शक्ति द्वारा अनन्त तक की यात्रा सुलभ हो गई है। ग्रन्थियों में समाहित दैविक अनुभूतियों का अनंत वर्णन मेरी लेखिनी द्वारा उनका दैविक स्पर्श पाकर ही सुलभ हो सका है। मेरी इस पुस्तक ''दैविक-ग्रन्थि-दर्पण'' के लिये दो शब्द क्या लिखूँ जबकि यहाँ शब्द की गुज़र ही

नहीं है। ऐसा कह लें कि आध्यात्मिक-श्रेष्ठ-गतियों से गुज़रते हुये दिव्य-ईश्वरीय ड्यौढ़ी में प्रवेश पाकर साक्षात्कार पाने तक सहज-दशा में लय हो जाने की राह में यह ग्रन्थियाँ तेरह पड़ाव के सदृश ही मेरे समक्ष में फैली हैं। मेरी लेखिनी का सौभाग्य यह लिखकर और भी उज्जवल हो जाना चाहता है कि-

"अब तक जो अनकहनी थी, अनुभव अब कहना चाहे,
आत्म-दर्शन जो चुप था, लेखन उसको लिखना चाहे"।

प्रथम ग्रन्थि

श्री बाबूजी की यह बात तो अनुभव द्वारा ही मैं जान सकी हूँ कि सहज-मार्ग साधना ब्रम्ह-विद्या का ही उपनाम (दूसरा नाम) है। वास्तविक ब्रम्ह-विद्या तो वही है जिसका पाठ प्रारम्भ करते ही हमारा ध्यान ध्येय अर्थात् ईश्वर-प्राप्ति के प्रति सजग हो उठे। सहज-मार्ग साधना में श्री बाबूजी महाराज की दैविक-इच्छा-शक्ति द्वारा, हृदय में ईश्वरीय-धारा का निरंतर प्रवाह हमारी सुषुप्त हुई दैविक-चेतना अर्थात् ईश्वरीय-सामीप्यता की याद को थपथपा देता है। हमारे ध्यान को साधना के प्रारम्भ की प्रथम सिटिंग से ही कि हृदय में ईश्वर मौजूद है और 'वह' हमारा है, 'वे' पावन बनाते रहते हैं। ध्यान में रखने का यह भाव प्रथम दिन से ही हमारे अंतर को ईश्वर से योग बनाये रखने का साधन बन जाता है। श्री बाबूजी का यह कथन कि हमारे यहाँ तो आंतरिक सत्संग है अर्थात् अंतर में सत् (ईश्वर) का संग (साथ) बनाये रखने का ही अभ्यास है। ध्यान को सही धारा मिल जाने पर ही मैंने पाया कि अंतर की भौतिकता पिघलने लगती है और श्री बाबूजी की कृपा एवं शक्ति में डूबी हुई ईश्वरीय-गतियों का ख़जाना, अर्थात् ग्रन्थियों के बंधन खुलने लगते हैं। कदाचित् यही कारण है कि आज यह पुस्तक लिखते समय मुझे लग रहा है कि मेरी लेखिनी मानो समक्ष में फैली प्रथम-ग्रन्थि में प्रवेश पाने का ही ब्यौरा लिखने जा रही है। जानते हैं क्यों? क्योंकि यह पुस्तक ग्रन्थियों का भेद खोलने के लिये मालिक का मात्र बहाना है।

ध्यान में डूबे हुये हृदय की उलझनें (विचार रूपी) जब सुलझने लगती हैं तो सहज-मार्ग साधना में ईश्वर-प्राप्ति का ध्येय होने के कारण विचार में पड़ी हुई सलवटें भी साफ़ होने लगती हैं। हृदय में प्रियतम ईश्वर का योग पाकर मानों यह हृदय भक्ति-रस की दिव्य-पवित्रता का प्रसारण पाने लगता है। क्या कहने हैं प्रथम-ग्रन्थि के उन्मूलन में पाई हुई भक्ति-मय स्थितियों के अनुभव का। इसे भक्ति का कोष ही कह सकते हैं। हृदय जितना शुद्ध होता जाता है, विचार उतनी ही जल्दी शुद्धता ग्रहण करने लगते हैं। विचारों की शुद्धता व्यवहार में शुद्धता लाती है। व्यवहार की शुद्धता ही हृदय में भाई-चारे के भाव को जन्म देती है। श्री बाबूजी द्वारा पाई हुई प्राण-शक्ति भाई-चारे के भाव में प्राण फूँक देती हैं। भक्ति में लीनता की दशा के कारण श्री बाबूजी का कथन यह ग्रन्थि चरितार्थ कर देती है कि Brother-hood, सहज-मार्ग साधना की जान है। वास्तव में साधना मात्र ईश्वर-प्राप्ति के लिये ही होती है और होना भी चाहिये,

तभी समस्त आत्मायें जो एक परमात्मा का ही अंश है अपनी ही मालूम होने लगती हैं।

समक्ष में व्याप्त प्रथम-ग्रन्थि का विवरण पुन: पुन: यही दशा प्रकट करता है कि हृदय में 'लक्ष्य' के प्रति स्थिरता ही स्थिर होती जाती है। बाबूजी द्वारा हृदय में निरंतर मिलने वाला ईश्वरीय-धारा का प्रवाह आत्मिक दशाओं की अनुभूतियों को अंतर में निखारता जाता है। ईश्वर, समस्त के अंतर में व्यापने वाला है इसलिये समस्त के अंदर एकीभाव अर्थात् भाई-चारे का भाव स्वत: ही पनप जाता है। आगे साधना में थोड़ा सा और पैरने पर hood भी उतर जाता है। और अंतर में केवल भाई के भाव की अनुभूति रह जाती है।

यह रहस्य इस पुस्तक के लेखन में ही मेरे समक्ष स्पष्ट हुआ है कि सहज-मार्ग साधना द्वारा भक्ति में डूबते ही हमारा कदम श्री बाबूजी की खोज स्वरूप प्रथम ग्रन्थि की स्पष्टता को व्याप्त करने लगता है अर्थात् प्रथम-ग्रन्थि में भक्ति-रस की रसानुभूति ही व्याप्त मिलती है। जानते हैं क्यों? तो सुनिये! जड़ और चेतन के मध्य पड़ी हुई ग्रन्थि क्या है सर्वप्रथम हमें यह जानना आवश्यक हो जाता है। हृदय में ईश्वर (चेतन) मौजूद है फिर भी उसे अनदेखा करते रहने के कारण ही उसे भूले हुये हम जड़वत् होकर रह जाते हैं और सांसारिक-जाल में उलझ कर उबरने का नाम ही नहीं लेते हैं। बस यही भूल हमारे और उसके मध्य की कड़ी (ग्रन्थि) बन जाती है। साधना में पाई भूल की अवस्था अर्थात् Forgetfulness की अवस्था प्राप्त होने पर ही श्री बाबूजी ने मुझे लिखा था कि 'अब तुम्हारे लिये आध्यात्मिकता का द्वार खुल गया है।' एक तथ्य यह है कि प्रेम की सतत् लयलीनता ही भूल की अवस्था को ले आती है। यद्यपि यह जड़ता झूठा आवरण है जीव पर, क्योंकि अंतर में पाई ईश्वरीय-धारा का प्रवाह हृदय में दैविक-चेतना को जब जागृति दे देता है और भक्ति का भाव दृढ़ हो जाता है तब यह झूठा आवरण अथवा ग्रन्थि की दशा सहज ही स्पष्ट हो जाती है। हम मूर्ति-पूजा से साधना आरम्भ करते हैं तो आख़िर तक मूर्त्ति ही पूजते रहते हैं, उसमें ईश्वर का भाव नहीं ला पाते हैं। यही कमी होती है जिसके कारण मंदिर में चौबीस घंटे पूजा करने वाले को मात्र पुजारी की संज्ञा दी जाती है, भक्त की नहीं। उसने मूर्ति में भगवान की मौजूदगी को देखा ही नहीं इसलिये दर्शन की तड़प उसमें जागती ही नहीं। यह बात भी मैंने सिद्ध पाई है कि साँची भक्ति द्वारा हृदय में ईश्वर के प्रेम का योग पाये बिना ग्रन्थियों की संकीर्णता दूर होकर इनमें व्याप्त दैविक-दशाओं में झाँक पाना भी असंभव है। मुख्य बात तो

यह है कि भक्ति-मय दशाओं के आनन्द में डुबाने के लिये इन दैविक ग्रन्थियों की खोज श्रीबाबूजी ने की। इतना ही नहीं अभ्यासी को जीवन के कम समय में ही Ultimate तक पहुँचाने के लिये ही की है, ताकि एक ओर अहं को सोलह-वृत्तों में लेकर उन वृत्तों को अपनी अमोघ इच्छा शक्ति द्वारा तोड़कर अपनी निगाह में समाई इन दिव्य दशाओं को अभ्यासी के कुल अस्तित्व में प्रवेश देकर उनके जीवन को धन्य बनाया जा सके। यद्यपि भक्ति, लगन एवं चाह तो आध्यात्मिक-मार्ग पर चलने वालों के लिये मात्र शर्त है और फिर श्री बाबूजी महाराज की अनन्त शक्ति पर आधिपत्य पाने का चमत्कार, हमें क्या से क्या बना देता है, यह ग्रन्थियों का उन्मूलन ही बता पायेगा। भक्ति से ग्रन्थि सुलझने लगती है। प्रेम में डूबे हृदय की लयलीनता की तड़प 'प्रिय' को पुकार उठती है फिर 'प्रिय' (ईश्वर) ही अपने आविर्भाव को अभ्यासी-हृदय में सहेजने के लिये पहल करता है। इस प्रथम ग्रन्थि के पसारे में मुझे लग रहा है कि तड़प की यह पुकार मैं तभी सुन सकी थी जबकि मेरे बाबूजी मुझे ईश्वर के विराट अर्थात् हृद-देश (heart region) की यात्रा सम्पन्न करा रहे थे। आज वह दशा मेरे 'मालिक' ने मेरे समक्ष कुछ इसप्रकार से व्याप्त कर दी है कि लगता है कि हृद-देश में चक्कर लगाती हुई मेरे हृदय की तड़प उन्हें ही पुकार रही है जिससे मैं ग्रन्थियों का कुल वर्णन इनकी दशाओं की प्रत्यक्षता में ही लिख सकूं।

वास्तविक बात तो यह है कि प्रथम-ग्रन्थि की हालत देख कर इसे ग्रन्थि की संज्ञा दूँ या इसे ईश्वरीय-हृदय का ही प्यारा नाम दूँ। लगता है कि हर ग्रन्थि की स्पष्टता मानों आगे लेखन के लिये मुझे दैविक-प्रकाश से प्रकाशित मार्ग देती रहेगी। आध्यात्मिक-क्षेत्र में इन ग्रन्थियों का नवीन एवं दैविक-अन्वेषण देकर श्रीबाबूजी ने ऐसी सहजता प्रदान कर दी है कि हमें लगता है मानों 'श्री बाबूजी' ने कुल दिव्य-ईश्वरीय दशाओं को अपनी मुट्ठी में कर लिया है। मैंने अपने अभ्यास में पाया है कि इन दिव्य गतियों को अभ्यासी के कुल अस्तित्व में प्रवेश देकर उसे उसका Divine पद अर्थात् सत्य-पद प्रदान करने की अद्‌भुत क्षमता एक दैविक करिश्मा ही है। पुनः अनन्त के देश, भूमा की गरिमा में स्थापित करके मानों भूमा, अर्थात् आदि-शक्ति पर अपने स्वामित्त्व होने का गौरव भी हमारे समक्ष प्रकट कर देते हैं। ऐसी हस्ती कभी धरा पर प्रकट ही नहीं हुई है जो प्राणीमात्र के दैविक-कल्याण हेतु अपने अथक-परिश्रम द्वारा दिव्य-प्रेम का श्रोत प्रवाहित कर सके। युग को दैविक महत्ता प्रदान करने के साथ ही श्री रामचन्द्र मिशन के अंतर्गत सहज-मार्ग System को श्रेष्ठता प्रदान करने के

लिये मानों उन्होंने प्राणीमात्र को अपने दैविक-संकल्प का यह नेह-निमंत्रण भी दिया है कि आज कोई भी उनसे प्राणाहुति-शक्ति का सहारा ले सकता है। सतत्-स्मरण में डूबे हुये अभ्यासियों के अहं को भुलाकर आज Ultimate तक ले जाने के लिये परम आदि-शक्ति के वारिस अर्थात् Representative श्री बाबूजी समर्थ सद्गुरु लालाजी सा. के दैविक-लाल के रूप में धरा पर उतर आये हैं। उन्होंने समस्त दिव्य-दशाओं को निगाह में रखकर मानों क्रमश: एक-एक ग्रन्थि में एकत्रित करके हमारे लिये सहजता प्रदान कर दी है। उनके दिव्य-अन्वेषण ने हमें बता दिया है कि आज समस्त के लिये अंतिम-सत्य अर्थात् Ultimate का द्वार खुल गया है जिसका विवरण दे पाने के लिये आदि-काल से लेकर अब तक आध्यात्मिक-साहित्य मौन है। आश्चर्य तो देखिये कि एक ओर मानव के अहं को सोलह वृत्तों में क़ैद करके मानों वे हमें बता रहे हैं कि उनमें इन्हें तोड़ देने की अनन्त क्षमता मौजूद है। दूसरी ओर एक दैविक रहस्य यह भी स्पष्ट हो गया है कि हृद-देश और हिरण्य-गर्भ तक का उल्लेख आध्यात्मिक-साहित्य में मिलता है किन्तु केन्द्र (Central Region) जो वास्तव में मैंने भूमा के वैभव के क्षेत्र के रूप में पाया है, जिसका जिक्र श्रीबाबूजी ने अपनी पुस्तक Efficacy of Rajyoga में प्रथम बार किया है,का कहीं कोई जिक्र नहीं है। उनके इस दिव्य-अन्वेषण द्वारा मानों स्वयं भूमा ने ही यह प्रकट कर दिया है कि यह (बाबूजी) भूमा के ही गोपाल हैं। पृथ्वी-तत्व के साये से भी नितान्त परे होते जाना ही प्रथम-ग्रन्थि की दशा का हवाला है।

द्वितीय ग्रन्थि

श्री बाबूजी ने हर ग्रन्थि पर ज्ञान एवं चेतनता का जो ज़िक्र किया है उसका अर्थ ही आज इन ग्रन्थियों की दशा के अनुभव का द्योतक है। इनका कुछ विवरण दे पाने का हौंसला भी दैविक-इच्छा है। इसके लेखन को निभायेंगे मेरे बाबूजी ही यह मैं जानती हूँ क्योंकि उन्होंने कहा भी था और मुझे पत्रों में लिखा भी था कि ''बिटिया, मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे द्वारा लिखित हर रीजन के विषय में हर Point एवं हर तथ्य की बारीकियों का विवरण अपनी प्रैक्टिकल हालतों के अनुभव के रूप में दो, ताकि लोग यह न कह सकें कि रामचन्द्र यों ही हाँक कर चला गया। तुम्हारे लेखन से यह वास्तविकता प्रगट हो जावे कि मैंने तुम्हें ऐसा बनाया भी है, हर हालत को तुममें उतारा भी है। इससे मेरे लेखन एवं कथन का बारीक से बारीक रहस्य भी समस्त के हित स्पष्ट हो जावेगा।'' वास्तव में उनकी इच्छा द्वारा ही मेरी लेखिनी आदि-सत्य का कुछ रहस्य स्पष्ट कर पाने के लिये सशक्त एवं सामर्थ्यमय हो सकी है। लेखिनी में उनका ही स्पर्श है, आदि-शक्ति के रहस्य को उजागर करने वाले भी वे स्वयं ही हैं। भला क्या कहना है इस दिव्य नजारे का कि समक्ष में बैठे हमारे बाबूजी की मृदु-मुस्कान में डूबी हुई लेखिनी आदि-सत्य को उजागर कर रही है। वे अब ऐसा समय ले जाये हैं कि हर दशा, हर point, हर रीजन अपना दैविक-रहस्य खोलते जा रहे हैं। या यों कहूँ कि खुद डिवाइन ही मानों समस्त के हित अपने को जताना चाहता है। तभी तो मेरी लेखिनी एवं समय अपने भाग्य को धन्य बनाने में लीन हो गये हैं। फिर भला आप ही बतायें कि यह लेखिनी थमें भी तो कैसे जबकि समक्ष में श्री बाबूजी महाराज द्वारा लिखित 'अनन्त की ओर' की ग्रन्थियों का अनन्त ब्यौरा है। लगता है कि अंतिम-सत्य अब कोई रहस्य छुपा पाने में असमर्थ हो गया है।

तो अब सुनिये कि श्रीबाबूजी के कथनानुसार इस दूसरी ग्रन्थि की पावन चेतनता हमारे लिये अपना क्या भेद स्पष्ट कर रही है। वैसे तो हर ग्रन्थि में प्रवेश पाने पर मैंने पाया है कि मानों प्रत्येक क्षेत्र की चेतनता (ज्ञान) से ही सर्वप्रथम हमारा सामना होता है। मैं तो यही देख रही हूँ कि मात्र श्री बाबूजी की इच्छा के कारण ही हर स्थान की दशा का ज्ञान स्वत: ही हमारे अंदर प्रवेश पा जाता है। मैंने पाया कि दशा का ज्ञान ही 'सारूप्यता' शब्द की व्याख्या है क्योंकि इसके द्वारा ही वहाँ फैली हालत एवं शक्ति की समझ (ज्ञान) हमें मिल पाती है। जैसा कि मैंने अपने पत्रों में हमेशा बाबूजी को लिखा था कि ''ऐसा लगता है कि यह दशा मेरा

स्वरूप ही हो गई है''। हाँ इतना जरूर है कि उस लेखन का अर्थ ग्रन्थियों की हालत के विषय में लिखते समय अब मेरे समक्ष प्रकट हुआ है।

एक बात तो देखिये सहज-मार्ग की सशक्त विशेषता की कि हर क्षेत्र की सारूप्यता की दशा प्राप्त करके हमें जो अनुभूति मिलती है उसमें वहाँ का ज्ञान क्रमशः लय होता जाता है। अब श्री बाबूजी के उस कथन का भेद मेरी समझ में आ रहा है कि हर दशा में हमारी लय-अवस्था होती चलती है ताकि हर क्षेत्र की दशा अपनी परिपक्व-अवस्था में आ जावे। अर्थात् हर दशा के साथ ही हमें हर जगह की शक्ति भी मिलती जावे तभी पूर्णता है। आज मेरा मस्तक स्वतः ही उनके चरणारविन्दों में नत हुआ यह पुकार उठता है कि मेरे बाबूजी आप अपनी बिटिया को कितने प्यार के सागर में लय करके ले गये हैं तभी आज यह लेखन समस्त के हित सुलभ हो पाया है। इतना ही नहीं एक दिन उस क्षेत्र में 'सायुज्यता' की दशा पाकर हम एक हो जाते हैं; तभी इससे आगे की दशा या ग्रन्थि की स्पष्टता का नज़ारा हमारे समक्ष व्याप्त हो जाता है और हमारा प्रवेश सहज ही उसमें हो जाता है।

भाई, मैंने तो यही पाया है कि आध्यात्मिक-विद्या के क्षेत्र में उतरने और यात्रा कर पाने के लिये प्रेम और भक्ति का दामन ही साथ देता है। फिर प्रत्येक दशा में लय-अवस्था प्राप्त करके हर रीजन एवं हर क्षेत्र की तह को छूने के लिये दिव्य विभूति श्री बाबूजी में लय रहते हुये ही हमारे लिये सब कुछ सुलभ एवं सरल हो जाता है। द्वितीय-ग्रन्थि का क्षेत्र भक्ति का एवं हल्केपन की हालत का अपना अनोखा महत्व रखता है। हमें यहाँ हल्केपन की अनुभूति का ख़्याल भी भारी लगता है। जानते हैं क्यों? क्योंकि आकाश-तत्त्व में फैलाव तो है किन्तु विचार इससे भारी होने के कारण यहाँ ठहर नहीं पाता है। श्री बाबूजी ने मुझे लिखा था कि तुम्हें हल्केपन का भाव भी इसलिये भारी लगता है कि ''जो हालत तुममें लय हो गयी है उसे जब तुम सोचना चाहती हो तो स्वच्छ, सरल एवं सहज-दशा पर दबाव पड़ता है क्योंकि विचार, सहज-दशा से भारी है''। मुझे स्मरण है कि मैंने बाबूजी को जब यह लिखा था कि- ''हर अणु-अणु में मुझे ईश्वरीय-दशा व्याप्त लगती है जो विचार से परे है।'' यही कारण है कि यहाँ विचारों की ग़ुजर नहीं है। अब यह सैर समाप्त हो जाती है और क़दम तीसरी ग्रन्थि की स्पष्टता में प्रवेश पा जाते हैं। सत्य तो यह है कि श्रीबाबूजी महाराज की दैविक-खोज के बिना आध्यात्मिक-क्षेत्र में मानव कल्याण हेतु दैविक-ग्रन्थियों का मर्म कभी उज्जवल ही न हो पाता।

तृतीय ग्रन्थि

(आत्मा का क्षेत्र)

कहावत है कि आध्यात्मिकता का रास्ता भक्ति के बिना खुलता नहीं है। इस ग्रन्थि में यह बात हमारे समक्ष स्पष्ट हो उठती है। मेरा अनुभव आज यही लिखने को मुझे लाचार कर रहा है कि श्रीबाबूजी की सहायता, हृदय को भक्ति करना शीघ्र सिखा देती है तथा हम अभ्यासियों के प्रति उनकी अपार कृपा एवं अहेतुकी अविरल प्रेम-वर्षा हृदय को पुनः पुनः डुबोकर भक्ति-रस से सरसाती रहती है- बस तभी हमारे हृदय में भक्ति की सरसता पुलक उठती है। कैसा अजूबा है कि उनकी कृपा मानव के आत्मिक-उत्थान के प्रति हृदय में ईश्वरीय-धारा के प्रवाह के साथ ही अपनी अविरल प्रेम-वर्षा से भक्ति की धारा प्लावित कर देती है। इतना ही नहीं उनका दैविक प्यार हृदयों को भक्ति ग्रहण कर पाने के लिये ग्रहण-शीलता भी प्रदान करता है। अब हमारे अभ्यास के लिये क्या शेष रह जाता है? बस यही कि विचार द्वारा अपने ध्यान को हृदय में योग दिये रहें, ताकि हमारे विचारों एवं ध्यान में जो भी बातें आध्यात्मिक-गति में विरोधी बन रही हैं वे उनकी प्राणाहुति-शक्ति से पिघल कर साफ़ होती रहें और हमारे हृदय में ईश्वरीय-प्रेम का समावेश होता रहे। विचारों के पवित्र होते जाने से अपने अंदर आध्यात्मिक-दशाओं को अनुभव कर पाने की क्षमता बढ़ जाती है।

श्री बाबूजी के यह कथन कि "विचार, आत्मा के क़रीब होते हैं और उससे ही शक्ति लेते हैं" विचारों की शुद्धता एवं ध्यान की तन्मयता पाने पर हमारे अंतर में निखर उठता है। इतना ही नहीं, तभी से इच्छा-शक्ति बलवती होने लगती है और विचार-शक्ति हमारे ध्यान को हृदय में स्थित ईश्वरीय-सामीप्यता का सेंक निरंतर प्रदान करती रहती है। वास्तव में हर ग्रन्थि को ईश्वरीय-गतियों का ही कोष कहूँ तो असत्य नहीं होगा। इसकी दशा में फैलाव पाकर हमारा ध्यान ईश्वरीय-आनन्द में सराबोर रहता हुआ उसमें लय अवस्था भी प्राप्त कर लेता है। इसप्रकार तीसरी ग्रन्थि का उन्मूलन हमारे हृदय को भक्ति से सराबोर कर देता है। सच तो यही है कि यहाँ मानों भक्ति का ही सरस-सागर फैला है इसीलिये यहाँ अभ्यासी में सतत्-स्मरण स्वयं ही पुलक उठता है।

अब जब याद आने लगी तो ध्यान में ईश्वर ही समाया रहने लगा। कितने दैविक-सौंदर्य का नजारा हमें मिलता है कि इस महत् गति में ले जाने वाले मेरे

बाबूजी महाराज के विराट् हृदय में से मानों मैं यह नज़ारा देख रही हूँ, यह एहसास भी सतत् रहने लगता है। यही कारण है कि मैंने कभी बाबूजी को पत्र में लिखा था कि इस दशा में मैं लय हो गई हूँ और साथ ही यह भी लिखा कि मैं सदैव आपमें ही लय हो गयी हूँ। यह अवस्था पढ़कर लगता है कि कबीर का कथन कितना सत्य एवं सटीक है कि ''गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूँ पाँय''। एक सहज-परिणाम यह भी यहाँ हमें मिल जाता है कि याद ने बार-बार दैविक-मौजूदगी के एहसास को कुरेदना शुरू कर दिया तो स्वत: ही ईश्वर-प्राप्ति हमारा परम उद्देश्य बन गया और प्रेम पैदा हो गया। लेखिनी ने तबसे श्री बाबूजी को पत्र में 'जीवन-सर्वस्व' शब्द लिखा था। आगे लिख पाने में मेरी लेखिनी स्थिर होने लगती है क्योंकि परम-उद्देश्य की प्राप्ति के लिये क्रमश: उससे मिलन की तड़प, तड़प उठती है एवं इसप्रकार आत्मिक-प्यार मानों परमात्मा का स्पर्श पाने लगता है। मानों हमारे श्रीबाबूजी आत्मा के द्वार पर दस्तक देकर हमारे अंदर यह चेतना (ज्ञान) भी भर देते हैं कि मानों हम आत्मा के क्षेत्र में आत्मा के गिर्द ही सैर कर रहे हैं।

तीसरी ग्रन्थि के क्षेत्र में हमें इतनी सरल एवं साम्य दशा का अनुभव होता है कि हमारा पावन मन मानों सरलता में स्नान करके हल्केपन का स्वरूप हो जाता है। यहाँ कभी ऐसा अनुभव भी होता है कि जैसे हम हवा में उड़ रहे हों। यद्यपि मैंने पाया है कि इसमें पैरते हुये यहाँ अगणित points का आभास मिलता है किन्तु अपने सहज-मार्ग की साधना में प्रवाहित बाबूजी की दैविक-शक्ति मानों हर क्षेत्र के मुख्य बिन्दु को ही जाग्रत कर वहाँ की हालत को निखार लाती है जिससे अगणित ग्रन्थियों का हवाला हमें मुख्य-बिन्दु द्वारा ही एहसास में मिल जाता है। इसप्रकार लय-अवस्था में डुबोये हुये बाबूजी महाराज हमें हर बिन्दु की यात्रा का एहसास देते चलते हैं एवं हमारे अंतरमन में हर बिन्दु की परम दशा का ज्ञान समा जाता है। उनकी इच्छा शक्ति ही हमारे अंदर हर ग्रन्थि के हर बिन्दु की दशा को निखार लाती है और हमें उसका ज्ञान (अनुभव) भी प्रदान करती है। तभी तो आज पचास वर्ष बाद उनके द्वारा यात्रा कराये हर point एवं प्रत्येक ग्रन्थि के क्षेत्र एवं प्रत्येक रीजन की हालत मानों समक्ष में व्याप्त पाकर ही पुस्तकों में पूर्णरीत्या लिख पाने में सफल हो सकी हूँ। आत्मा का क्षेत्र होने के कारण यहाँ अंदर और बाहर एक सी हालत होने का बोध हो रहा है तभी तो किसी भक्त की लिखी हुई लाइन मेरे सामने मानों प्रत्यक्ष हो उठी है कि ''गुड़ से मीठे हैं भगवान, बाहर-भीतर एक समान''। इतना ही नहीं ऐसा

लग रहा है कि यहाँ कुल क्षेत्र मानों आत्मिक-प्रकाश से प्रकाशित है। क्रमशः इस क्षेत्र की कुल दशा का विवरण मिल जाने पर लगता है कि बाबूजी अभ्यासी को इस वृत्त में लय कर देते हैं और चारों ओर अलौकिक प्रकाश में दशा विलीन होकर दैविक-प्रकाश से प्रकाशित हो उठती है। देखते ही देखते इस तीसरी ग्रन्थि की कुल हालत हमारे में समा जाती है और श्री बाबूजी अपनी शक्ति के सहारे अभ्यासी को आगे के स्तर में उछाल देते हैं। सच ही तब हम चौथी ग्रन्थि के उन्मूलन हुये वृत्त में प्रवेश पा जाते हैं।

चतुर्थ ग्रन्थि

भाइयों! मैं क्या लिखूँ ग्रन्थियाँ हैं या आदि-शक्ति के लघु केन्द्र हैं? मैंने अपने बाबूजी को पत्रों में अपनी आत्मिक दशायें लिखते हुये हर दशा के बाद में यह लिखा है कि यह दशा मानों मेरा स्वरूप ही हो गई है क्योंकि मुझे देखने या दशा को देखने में कोई अंतर नहीं मिलता है। आज जब मेरे श्री बाबूजी ने अपनी दिव्य-खोज के स्वरूप तेरह ग्रन्थियों का अन्वेषण किया है तो इनके विषय में कुछ लिख पाने की कोशिश में यह अवश्य लिखना चाहूँगी कि वास्तव में हर दशा की सारूप्यता उस क्षेत्र या केन्द्र की दशा एवं शक्ति पर स्वामित्व प्राप्त करना ही होता है। इतना ही नहीं फिर उसमें सायुज्यता (मिल जाना) ही मानों उस वृत्त में समा जाना होता है। कदाचित् ऐसा होते-होते ही एक दिन हमारे प्राण वृहत-प्राण में समाते हुये महत् (आदि) प्राण में लय हो जाते हैं। यही कारण है कि आज यह सत्य मेरी पुस्तकों के लेखन में प्रत्यक्ष हो गया है कि ऐसा हो जाने पर जब भी हम किसी विषय में लिखना चाहते हैं हमारे समक्ष वह दशा व्याप्त हो जाती है। भला अभ्यासियों के प्रति श्रीबाबूजी के दैविक-प्यार के प्रतीक का सानी कभी कोई होगा! कदापि नहीं, आध्यात्मिक ग्रन्थ, वेद-शास्त्र भी इस दिशा में मौन है ऐसा कोई न हुआ है, न होगा। जानते हैं क्यों? क्योंकि आदि-शक्ति के प्रतीक रूप में हमारे समर्थ सद्गुरू श्री लालाजी सा. श्री बाबूजी महाराज को अपनी प्रार्थना के फलस्वरूप मानव के आत्मिक-उद्धार हेतु धरा पर उतार लाये हैं।

एक बात यहाँ मैं पा रही हूँ कि लगता है कि ग्रन्थियों का अथवा आदि-शक्ति के ठहराव में समाई शक्ति एवं वहाँ के दैविक-वातावरण में प्रकाशित दशाओं के भेद को आज मेरे बाबूजी समस्त के हित खोल देना चाहते हैं। समक्ष में बिखरी इस ग्रन्थि के वृत्त की दशा में मैं पा रही हूँ कि मानों ईश्वरीय-प्रकाश के पुञ्ज की तपिश का एकत्रित रहते हुये यहाँ ठोस रूप दिखाई पड़ रहा है। कदाचित् इसीलिये श्रीबाबूजी ने इसे अग्नि-तत्त्व का नाम दिया है। जानते हैं ऐसा क्यों है? तो सुनिये! दिव्य-प्रकाश में तपिश नहीं है इसलिये वह ध्यान में हमें शान्ति प्रदान करता है। किन्तु रचनात्मक-शक्ति की, जो पावन और तपिश से मुक्त थी, क्रियाशीलता में ज्यों-ज्यों पदार्थ (Matter) का प्रवेश होता गया तो तपिश पैदा हो गई एवं पेचीदगियाँ (ग्रन्थियाँ) पड़ती गईं। जब उस शक्ति का विभाजन क्रमशः सीमागत होता गया तो ग्रन्थियों में पदार्थ (Matter) ठोस पड़ गया और पंच-भौतिक तत्त्वों में बदल गया जिससे मानव-शरीर अर्थात् पंचतत्व मय शरीर की उत्पत्ति हुई किन्तु दिव्य-शक्ति

के अनन्त प्यार की यह देन मानव हित वरदान रही कि 'उसने' (दिव्य शक्ति) हर पेचीदगी में भी अपने लिये स्थान सुरक्षित रखा। आज इस अलौकिक सत्य के स्पष्टीकरण में मैं अपने बाबूजी की दयामयी-दृष्टि की उज्जवलता द्वारा ही यहाँ की हालत का नज़ारा समक्ष में पाकर ही लेखिनी को उठा रही हूँ। अब तक मैं अपने बाबूजी की अभ्यासी के आत्मिक-उन्नति हित महत्ता एवं सतर्कता को नहीं जान पाई जो आज मेरे समक्ष हैं और मेरी आँखों में स्वत: नीर भर आया है। मैं देख रही हूँ कि मुझे हर ग्रन्थि के देश अथवा रीज़न की यात्रा कराते समय दिव्य-शक्ति के उस सुरक्षित स्थान की ओर जिसे 'उसने' मानव के हर Coverings या पेचीदगियों में भी अपने ठहरने के लिये सुरक्षित रखा था, वे हमारे ध्यान के रूख को योग देते गये। मानों अभ्यासी के ध्यान को दिव्य-शक्ति से मैत्री प्रदान कराते हुये ही श्रेष्ठ-स्तर तक ले गये। जानते हैं क्यों? क्योंकि उन्होंने सहज-मार्ग सिस्टम में मानव को ईश्वर प्राप्ति का लक्ष्य दिया है और अपनी कृपा एवं शक्ति से आदि-शक्ति भूमा या अल्टीमेट तक ले जाने का दृढ़ एवं महत् संकल्प लिया है। तभी तो उनकी बिटिया आज 'उनके' दिव्य करम की देन से धरा को सदैव सजाये रखने के लिए 'उनकी' कृपा का मानों अधिकार पा गई है। यही कारण है कि पुस्तक लेखन के रूप में मानों उनका ही दिव्य-गुणानुवाद गाती जा रही है।

लीजिये अब यह भी सुन लें कि मेरे बाबूजी ने कब और कैसे पचास वर्ष पूर्व मुझे इस अग्नि-तत्त्व का ज्ञान दिया था। सहज-मार्ग साधना के प्रारम्भ करने के शायद छ: सात महीने बाद ही रात्रि को करीब बारह एक बजे सोते में अचानक मुझे लगा कि जैसे ही श्रीबाबूजी ने अपने Transmission द्वारा मेरे अंदर एक point को छुआ तो वह point एकदम से खुल गया और उसमें से अग्नि सी निकल पड़ी। तुरन्त उठकर बैठ गई तो लगा कि मानों किसी ने एकदम से अग्नि को साध (Control) लिया था। डायरी में हालत लिखकर जी नहीं माना तो दीपक की रोशनी में ही अपने जीवन-सर्वस्व श्री बाबूजी को पत्र में यह हाल लिख दिया-सबेरे भेज दिया। देखती क्या हूँ कि तीन, चार दिन बाद अति प्यार भरा और मेरी जिज्ञासा का उत्तर लिये हुए उसी रात का लिखा हुआ और रात के एक बजे ही लिखा हुआ उनका पत्र मुझे मिला। उन्होंने लिखा था कि ''रात को करीब बारह, साढ़े बारह बजे मैं तुम्हें तवज्जह (Transmission) दे रहा था तो एक दम से वह point खुल गया और उसमें से आग सी निकली मैं लिख रहा हूँ कि तुम्हारा अग्नि-तत्त्व का point खुल गया है- ईश्वर ने चाहा तो तुम्हारी भक्ति और लय-अवस्था से तुम्हारे हर point ऐसे ही

खुलते जायेंगे, हर ग्रन्थि तुम्हारे समक्ष खुलती जायेगी। हर दशा में तुम्हारी लय-अवस्था और Mastery देखकर लगता है कि लालाजी सा. ईश्वरीय क्षेत्र में तुम्हें उन्नति प्रदान करने के लिये कुछ उठा न रखेंगे। लगता है दूर (अंतिम सत्य) तक मेरी कुल Research तुम्हारे द्वारा पूर्ण होगी। यही हिम्मत रही तो हर दैविक-दशा पर तुम्हें अधिकार (Mastery) भी मिलता जायेगा। मुझे बेहद खुशी है कि मेरी हालत की पुनरावृत्ति तुममें हो रही है''। आगे उनकी ममता ने क्या लिखा था यह पढ़कर तो आप दंग रह जायेंगे। लिखा कि ''बिटिया, मुझे फिक्र है कि किसी नस में या कहीं भी कोई दबाव या गर्मी तो नहीं है? जब तक तुम्हारा पत्र नहीं आ जाता है, मुझे तुम्हारी फिक्र बनी रहेगी क्योंकि तुम कमज़ोर हो''। अभ्यासियों के प्रति उनके ऐसे ममत्त्व की वर्षा करते हुये यह चौथी-ग्रन्थि का क्षेत्र अपना हवाला देकर मानों ध्यानावस्थित होकर अपना अस्तित्त्व खो बैठा है। मानों अपना सब कुछ मेरे बाबूजी को सौंप कर यह ग्रन्थि उनमें ही लय हो गई है। किन्तु लय होते-होते यह हमारा जागरण पाँचवीं-ग्रन्थि के देश में कर देती है। अब समक्ष में मानों पाँचवीं-ग्रन्थि का पसारा अपना परिचय देने के लिये तत्पर है तो यह लेखनी भी अपने जीवन-सर्वस्व श्रीबाबूजी महाराज का दैविक-स्पर्श पाकर लेखन हेतु सशक्त एवं चेतन हो उठी है।

पंचम ग्रन्थि

इस ग्रन्थि में व्याप्त-दैविक-दशा का विवरण लिखने से पहले मेरे बाबूजी वास्तविक ज्ञान की परिभाषा जो स्वयं में साधना के द्वारा खिल उठती है, के विषय में ही कुछ लिखाना चाह रहे हैं। उसका ही उल्लेख करने मैं जा रही हूँ। किसी देश या स्थान के वास्तविक तथ्य को पूर्णारीत्या जान लेना ही उस स्थान का वास्तविक ज्ञान होता है। मुझे खूब याद है कि साधन-काल में मेरे बाबूजी हर point , हर क्षेत्र एवं हर रीजन की दशा में लय-अवस्था प्रदान करते हुये मुझे इसलिये ले गये कि आध्यात्मिकता में हर बारीक से बारीक पहलू की जानकारी मुझे होती चले एवं इस जगह शक्ति का भी मुझमें समावेश होता चले। सच तो मैंने यही पाया है कि ईश्वरीय-देश के ज्ञान को परिधि में नहीं लिया जा सकता है क्योंकि वह भी विचार एवं ध्यान की परिधि से स्वतंत्र है। कदाचित् यही कारण है कि मुक्ति (Liberation) की तीन अवस्थायें, सामीप्यता, सारूप्यता एवं सायुज्यता के प्राप्त हो जाने पर जो चौथी अवस्था है उसके विषय में आध्यात्मिक ग्रन्थ मौन ही रहे हैं क्योंकि ईश्वरीय-देश एवं साक्षात्कार तक पाने का दैविक-लक्ष्य तक का ज्ञान तो भक्तों के अनुभव द्वारा हमें मिलता है किन्तु ''ईश्वरीय-मिलन'' का श्रेष्ठ लक्ष्य तो श्री बाबूजी ने ही हमें दिखाया है। जानते हैं क्यों? क्योंकि भूमा के वैभव के देश 'सेन्टर रीजन' की खोज को तो वे ही मानव-हित समक्ष में लाये हैं। बिना ईश्वरीय-शक्ति में डूबे हुये किसी को इस डिवाइन देश में प्रवेश मिल ही नहीं सकता है, क्योंकि ईश्वरीय-शक्ति सृष्टि-रचना की जान है और भूमा का वैभव-देश सेन्टर-रीजन रचना से परे भूमा का स्थान है जिसमें श्रीबाबूजी ही हमें प्रवेश देते हैं। तभी तो उन्होंने मानव को अंतिम-सत्य (भूमा) में प्रवेश पाने का ही दिव्य परम-लक्ष्य प्रदान किया है।

अभ्यासी के प्रति उनकी देख-रेख का तो कहना ही क्या है। सच ही कबीर का कथन आज मुझे आँखों के आगे अपनी सत्यता को प्रगट करता मिलता है कि ''ताके पीछे हरि फिरैं कहत कबीर-कबीर''। हर ग्रन्थि के क्षेत्र का दैविक-सौंदर्य जो हर पुस्तक लिखते समय हर रीजन एवं point की स्पष्टता के लिये मेरे समक्ष व्यापक था, आज भी यह पुस्तक लिखते समय व्यापक है तो लगता है कि वे अपने अभ्यासी को मात्र ईश्वरीय-लक्ष्य प्रदान करने के लिये हर क्षेत्र या स्थान के ठोस एवं चमत्कारिक-शक्ति के अनुभव से बचाते हुये उनके ध्यान के रूझान को अपनी दैविक-शक्ति द्वारा ईश्वरीय शक्ति से ही योग देते चलते हैं ताकि वह शक्ति हमें

अपनी ही ओर खींचती रहे। कदाचित् यही कारण है कि समक्ष में फैली हर ग्रन्थि के दैविक-क्षेत्र को पार करने में उनमें लय-अवस्था पाने के कारण ही वहाँ की शक्ति पाते हुये हमारी उन्नति की गति निरंतर बढ़ती चली जाती है। इतना ही नहीं ईश्वर-प्राप्ति की दिशा में हमारी चाह ईश्वरीय-शक्ति से मिलकर श्रेष्ठ होती जाती है। सच तो यह है कि जो मानव-मात्र के आत्मिक-कल्याण हेतु धरा को पावन करने के लिये आये हैं उन श्रीबाबूजी का अनन्त प्यार ही आज सहज-मार्ग साधना द्वारा अपने दिव्य-प्राणों की आहुति प्रदान करते हुये आध्यात्मिक-क्षेत्रों की यात्रा कराते हुये हमारे जीवन काल के भी थोड़े समय में उस दिव्य-देश में पहुँचाने की क्षमता रखता है। सत्य तो यह है कि यह तो उनकी दैविक-बान ही पड़ गई है। साथ ही अपनी दैविक-खोज के अंतर्गत हर ग्रन्थि के उन्मूलन के साथ वहाँ की यात्रा एवं शक्ति का भी सम्पुट देते जाते हैं। अंतिम-सत्य (भूमा) की दिशा में प्रगति प्रदान करने के लिये उनकी नवीन खोज अनुपमेय है।

तो अब सुनिये पाँचवीं-ग्रन्थि समस्त के प्रति अपना और भी कुछ विवरण देने जा रही है। मैं स्पष्ट पा रही हूँ कि इस क्षेत्र में प्रवेश पाने पर लगता है कि मानों जल की फुहारें हर समय हमारे अंतर को भिगो रही हैं। जैसे गर्मी की तपिश के बाद जल की फुहारों का स्पर्श कितना आरामदायक लगता है। उसी प्रकार इन फुहारों के स्पर्श की ताज़गी का एहसास हमारे अंतर में कहीं आराम देता रहता है। बड़ा आश्चर्य होता है कि एक ओर तो ऐसे सुखद आनन्द की feeling और दूसरी ओर अंतर में समाई मेरे श्री बाबूजी की प्यार भरी दृष्टि जो प्रियतम ईश्वर से मिलन की चाह को इतना बढ़ा देती है कि हमारा अनुभव जल के स्पर्श की ताज़गी को भूलकर ईश्वरीय सामीप्यता के एहसास में डूब जाता है। जानते हैं क्यों? जिससे हमारे अनुभव में मात्र ईश्वरीय-सामीप्यता के परमानन्द-मय-अनुभव के अतिरिक्त अन्य सुख का एहसास न रह जावे। लेकिन एक अलौकिक एवं अनोखे अनुभव के बारे में तो मैं लिखना भूल ही गई हूँ जो कि समक्ष में व्याप्त होकर मानों मुझसे अपने बारे में लिखने को कह रहा है। यहाँ कभी परमानन्द में डूबकर प्रसन्न होने अथवा हृदय के हँसते रहने की अनुभूति होती है क्योंकि जब अनुभव की दृष्टि 'मेरे पीछे हरि फिरें' की हालत का नज़ारा देती है तो स्वत: ही मन हर्ष में डूब जाता है तब मानों मेरा रोम-रोम पुलक उठता है ऐसा मैंने पत्र में श्रीबाबूजी को लिखा था। कभी विलगता की दशा आँखों में ही नीर नहीं भरती थी बल्कि लगता था कि मेरा कण-कण अश्रु में भीगा मानों प्रियतम को ही पुकार रहा है। मैंने श्री बाबूजी महाराज को तब अपने वियोग की दशा लिखते हुये लिखा था कि मेरी हालत तो

यह हो गई है कि ''ऊँची जात पपीहरा पियत न नीचो नीर, कै जाँचत घनश्याम सौं, कै रहि धुनत शरीर''।

भाई, कैसी दुतरफ़ा हालत का स्थान है यह! कभी तो फुहारों में डूबा मन प्रसन्नता से भर जाता है और कभी मन्द वायु की मधुरता मन को छूकर मानों मालिक की चाह की तीव्रता को बढ़ा जाती है। इस ग्रन्थि के स्थान में व्याप्त दशा में सारूप्यता प्राप्त करने पर जब सायुज्यता मिल जाती है तब मैं पा रही हूँ कि वायु की ध्वनि की मधुरता भी हमारे में लय होती चली जाती है और हमें ग्रन्थि के मध्य के दाने-सेन्टर में प्रवेश मिलता है। इस सेन्टर में प्रवेश पाकर मैं पा रही हूँ कि 'वायु तत्व' का मुख्य स्थान यही है जबकि इसके चारों ओर जल की फुहारों की ही ताज़गी मिलती है। मानों पाँचवीं-ग्रन्थि के दाने में वायु-तत्व का ही समावेश है। जैसा कि मैं अब पा रही हूँ कि वास्तव में दाने का अर्थ है कि ग्रन्थि के मध्य का मुख्य केन्द्र-बिन्दु अथवा ग्रन्थि का Master बिन्दु जो वायु-तत्त्व का द्योतक है, जिसकी वायु अपने तौर पर निराली है। यहाँ का अनुभव भी अलौकिक है। लगता है कि अपना हर कण-कण, यहाँ का हर अणु-अणु एक नहाये-धोये आदमी की तरह से खिला हुआ लगता है। मुझे आज भी याद आ रहा है कि पिंड-देश की यात्रा कराते हुये लिखा था कि ''यहाँ सिद्धियाँ और चमत्कारों का राज्य है लेकिन बिटिया, मैं अपनी आध्यात्मिक क्षेत्र की पूर्ण खोज को पूरा करने के कारण तुम्हें मात्र उस जगह की यात्रा करा रहा हूँ जो कि तुम्हें ईश्वरीय-लक्ष्य प्राप्ति की ओर उन्मुख करने की तड़प एवं आंतरिक-शक्ति को ही ताज़गी देती है, शेष को तुम्हारी पीठ का साया दे देता हूँ। यद्यपि खोज की पूर्णता के लिये मैंने यहाँ के सभी points जागृत कर दिये हैं ताकि तुम्हारा अनुभव तेज होता चले और हर क्षेत्र की पूर्ण-शक्ति भी तुममें प्रवेश पाती रहे। तुम्हारे अनुभव की तारीफ़ भी किये बिना मैं नहीं रह सकता हूँ। तुम्हारे ध्यान की धारा को सीधा ईश्वर की ओर साधे रखा है इसमें तुमने मुझे भक्ति का पूरा सहयोग भी दिया है।''

भला आप ही बतायें कि पूर्ण आध्यात्मिक-इतिहास किसी ऐसे गुरू का हवाला दे सकता है जो अभ्यासी को कलेजे से लगाये उसकी उन्नति देने के ही ध्यान में मगन हुआ हमें हर points की यात्रा करवाते हुये हमारे ध्यान की धारा को सतत् ईश्वरोन्मुख किये रहते हैं। पिंड-देश में चर्चित जहाँ पाँचों ग्रन्थियों में फैले भौतिक-चमत्कारों का जाल बिछा हो उसमें भी मैंने देखा है कि मेरे ध्यान की धारा का रूख़ ईश्वर-प्राप्ति की ओर इस प्रकार से मोड़े रहे कि अन्य सोच का मेरे

पास समय ही न रहा। मुझे इसप्रकार से रखा है कि सोच कर पाने का भी सोच मुझे कभी आता ही नहीं है। मैंने देखा है कि पिंड देश में भी हालत लिखते समय चमत्कारों की मुझे हवा भी नहीं लगने दी थी। यदि कभी कुछ हो जाता था तो मन उनकी कृपा समझ कर उनमें ही डूब जाता था। कदाचित् यही कारण है कि मैंने पत्रों में हमेशा अपने बाबूजी को यही लिखा है कि "आपने मुझे शूलों से परे रखकर पुष्पों की दैविक-राह पर ही चलाया है।" मुझे भलीभाँति स्मरण है कि स्वत: ही मुझसे कभी चमत्कार सम्पन्न हो भी जाते थे तो उन्हें भी बाबूजी को ऐसी मेरी हालत है कह कर ही लिखा था। उन्होंने बहुधा मुझे यही लिखा था कि "बिटिया, हमसे चमत्कार हो जाते हैं समय पर, किन्तु हम कर नहीं सकते हैं"। यहाँ की यात्रा समाप्त होते ही मानों हम भौतिक-तत्त्वों अर्थात् पिंड देश से परे होकर चमत्कारों के देश से भी पार हो जाते हैं। वास्तविक सार मैं यही पा रही हूँ कि हर दशा की सायुज्यता पा लेना ही उस दशा के प्राण में समा जाना होता है और एक दिन वृहत्-प्राण में समाते हुये हम महत्-प्राण में लय हो जाते हैं। तो छठी ग्रन्थि की हालत का पसारा अब मुझे समीप बुलाकर मानों अपने बारे में कुछ बोलना चाहता है।

षष्ठम् ग्रन्थि

पिन्ड-देश को पार करके जब इस छठी ग्रन्थि की हालत को बाबूजी मेरे समक्ष में रख रहे हैं और लेखिनी उनका स्पर्श पाकर अपने सौभाग्य से मानों कभी थमना नहीं चाहती है और कुछ लिखते रहना ही चाहती है। तो सुनिये यहाँ मैं पा रही हूँ कि माया के ठोस बंधन से मुक्ति पाकर मानों एक प्रकार की स्वतंत्रता ही व्याप्त मिल रही है। मुझे ऐसा लग रहा है कि जन्म-मरण के ठोस बंधन से मुक्ति पाकर स्वतंत्रतापूर्वक यहाँ यात्रा कर रही हूँ। जानते हैं क्यों? क्योंकि पंच-तत्त्वों-पृथ्वी, जल, पावक, आकाश एवं वायु के बंधन से परे रखकर मेरे श्री बाबूजी कैसे हमें धरा पर जीवित रखते हैं यह दिव्य-विभूति मेरे श्री बाबूजी की दैविक-शक्ति की क्षमता का एक लघु नमूना ही प्रतीत हो रहा है। कदाचित् इस दिव्य-विभूति से धरा को विभूषित करने वाले श्री बाबूजी को उतार लाने की दैविक कार्य क्षमता के कारण ही समर्थ सद्गुरू श्री लालाजी सा. को ईश्वर ने ही Spiritual Giant की परम-उपाधि से सुशोभित किया है।

यह ईश्वरीय-विराट् देश है अथवा यह कहूँ कि यह ईश्वर का विराट्-हृदय है। यूँ तो ब्रह्मांड-मंडल का अर्थ आध्यात्मिकता का वृहत-मंडल ही कहा जा सकता है। यहाँ फैली हुई दशा की प्रत्यक्षता हमें ईश्वरीय-विराट् मंडल के ही पसारे का अनुभव दे रही है। यह मेरे श्रीबाबूजी द्वारा बताई गई सहज-मार्ग-साधना की विशिष्टता को और भी प्रत्यक्ष कर रही है। सहज-मार्ग साधना में ध्यान में हमें हृदय में ईश्वरीय-प्रकाश में ही डूबे रह पाने का अभ्यास बताया गया है। इस दैविक-कृपा का परिणाम हमें यह मिलता है कि ध्यानावस्थित रहते-रहते ईश्वरीय-प्रकाश हमारे अंतर की स्नायु ठोसता को जैसे-जैसे पिघलाता जाता है वैसे ही वैसे मैंने हमेशा बाबूजी को लिखा था कि ''मेरे कण-कण में ईश्वरीय-प्रकाश प्रकाशित होता जाता है।'' मुझे भली-भाँति स्मरण है कि अपने बाबूजी को यह दशा लिखने पर उन्होंने लिखा था कि ''यह ईश्वरीय-प्रकाश है और ईश्वर सर्वत्र है, कण-कण में व्याप्त है, इसलिये उसका प्रकाश भी सीमित नहीं रह सकता है। जैसे-जैसे तुम इसमें डूबती जाती हो तुम्हारे कण-कण में यह फैलता जा रहा है और इसीलिये तुम्हें सर्वत्र ही यह व्याप्त दिखाई दे रहा है- मानों अंधेरा कहीं रह ही नहीं गया है। इतना ही नहीं आगे उन्होंने लिखा था कि ''ऐसी ही हिम्मत और लगन रही तो आगे जो लालाजी सा. तुम्हें दिखायेंगे वह समय ही

बतायेगा''। कदाचित् इसीलिये ईश्वरीय-देश होने के कारण यह पूर्ण ब्रम्हाण्ड का मंडल मानों मुझसे कह रहा है कि यहाँ देखो, सम्पूर्ण मंडल ईश्वरीय-प्रकाश का ही देश है। इतना ही नहीं यहाँ की हालत को ओढ़ने में मानों मेरा स्वयं का स्वरूप ईश्वरीय-प्रकाश मय हो गया है। भला बतायें कौन समझायेगा मुझे इस तरह से हर जगह की दशा को पुनः दिखला-दिखला कर लिखने के लिये। एक अलौकिक बात यह भी है कि ऐसी स्थिति की प्राप्ति के बाद ही जैसे इस प्रकाश को देखने वाली अन्तर दृष्टि दिव्य-दृष्टि में समा जाती है। फिर न तो प्रकाश और न अंधेरा यह सारा ही एहसास समाप्त हो जाता है। मुझे अच्छी तरह से याद है कि यहाँ की दशा में लय-अवस्था प्राप्त हो जाने पर श्री बाबूजी ने मुझे लिखा था कि ''यदि तुम ख़्याल बाँधो कि ब्रम्हाण्ड-मंडल से ताक़त की फुहारें तुम्हारे शरीर में प्रवेश कर रही हैं और बीमारी ठीक हो रही है तो तुम ज़रूर ठीक हो जाओगी और स्वस्थ हो जाओगी।'' आज जब मैं समक्ष में फैली इस अवस्था को पढ़ रही हूँ तो श्रीबाबूजी महाराज के कथन की सत्यता इसप्रकार प्रकट हो रही है, मैं देख रही हूँ कि ऊपर से आने वाली इस energy द्वारा ही शरीर पलता है। मुझे आज भी याद आ रहा है कि उनका यह पत्र पहुँचने पर उनकी ही दैविक-शक्ति ने मुझे आगे सातवीं ग्रन्थि के क्षेत्र में प्रवेश दे दिया था क्योंकि देख रही हूँ कि मानों तब मौसम ही बदल गया था। अब देखें सातवीं ग्रन्थि के क्षेत्र का मिजाज़ कैसा है?

सप्तम् ग्रन्थि

अब मानों मौसम ही बदल गया है। लग रहा है कि समक्ष की शक्ति में किसी दैविक-तेज से तेज आ रहा है जिसका श्री बाबूजी ने मेरी आध्यात्मिक प्रगति के क्षेत्र से योग दे दिया था। यही कारण है कि आज 49 वर्ष पहले प्राप्त हुई दैविक-दशायें व अनुभूतियाँ जागृत होकर मेरे लेखन को सत्य की प्रत्यक्षता का प्रकाश दे रही हैं और कह सकी है कि "धरा पर चलते हुये भी मेरे पैर धरा का स्पर्श नहीं पाते हैं।" वास्तव में श्री बाबूजी महाराज लिखित इन तेरह ग्रन्थियों में दैविक-दशाओं एवं दैविक-शक्ति के तेज से ही तेजोमय पाकर इन्हें ग्रन्थि के नाम की संज्ञा देना अच्छा नहीं लग रहा है। जब तक देखा नहीं था तब तक कुछ पता ही नहीं था किन्तु आज जब मेरे बाबूजी ही इनके रहस्य को खोलना चाह रहे हैं तभी मैं इनमें दैविक-सत्य का दर्शन पा सकी हूँ और इसी से मेरी लेखिनी को हौंसला भी मिला है। समक्ष में जब दैविक-हालतों का फैलाव देखती है तो मेरी लेखिनी ग्रन्थि-शब्द का प्रयोग भूलकर इन्हें दिव्य-दशाओं का नाम देने लगती है किन्तु यह लिखना तो अनिवार्य हो जाता है कि मुझे ऐसा तो ज़रूर लग रहा है कि लगता है उन्होंने अपनी Research के हेतु प्रत्येक दशा के फैलाव को अपनी दिव्य-दृष्टि में लेकर फैलाया है, दशा को उभारा है इसीलिये इन्हें ग्रन्थि का जामा पहनाया है। अपने दिव्य संकल्प को पूर्ण कर पाने हेतु मानव-उम्र का इतना कम समय पर्याप्त नहीं हो पाता इसलिये उन्होंने अपनी दिव्य खोज द्वारा अनन्त एवं श्रेष्ठ-गतियों को अपनी दृष्टि के साये में रखकर प्राणी-मात्र के हित अंतिम-सत्य अर्थात् भूमा तक की पहुँच का द्वार खोलकर अपने दिव्य-विभूति होने को प्रमाणित भी कर दिया है। इतना ही नहीं अपनी इस दिव्य-खोज को अपनी बिटिया में उतारकर इस सत्य को समस्त के हित प्रत्यक्ष भी कर दिया है कि आज प्राणीमात्र के जीवन सहज-मार्ग साधना के द्वारा उनकी प्राणाहुति शक्ति का सहारा पाकर अनन्त गति की यात्रा में तन्मय होकर धन्य हो सकते हैं। साथ ही उन्होंने अपनी दिव्य-खोज सेन्टर रीजन में प्रवेश देकर, पैराव या Swimming देते हुए Brighter-World की झलक में डुबकी देकर अपनी बिटिया में पूर्ण दिव्य-खोज को उतार कर प्रत्यक्ष कर दिया है कि वे भूमा की शक्ति पर स्वामित्व पाये हुये उसके दिव्य-संकल्प के प्रतीक हैं। इस दैविक-ग्रन्थि की दशा में मुझे दिखाया है कि परम-शक्ति की सहज-धारा में प्रवेश देकर ही उन्होंने मुझे हर क्षेत्र की दशा की पूर्ण यात्रा एवं वहाँ की शक्ति एवं इसके प्रयोग का पता भी दे दिया है।

आज वह समां मुझे याद आ रहा है कि जो दशा मैंने पत्र में अपने बाबूजी को लिखी थी कि ''आप मुझे ऐसे देश में ले आये हैं जहाँ आगे गति का रूकना, थमना समाप्त हो गया है क्योंकि यहाँ भक्ति की गुज़र नहीं है, मेरा वश कुछ भी नहीं है। बस गति स्वत: चालित रहती है ऐसा ध्यान देने पर ही पता लगता है''। यह दशा इसी ग्रन्थि के समाँ में समाई मिल रही है। अब मुझे पता लग रहा है कि ब्रम्हांड-मंडल एवं पार-ब्रम्हांड-मंडल दोनों ही पर सातवीं ग्रन्थि का समाँ एवं शक्ति छाई हुई है। कदाचित् इसीलिये उस समय उन्होंने मुझे शाहजहाँपुर बुलाया था यह कहकर कि ''आज मेरे दिल का दरिया उमड़ पड़ा है कि बिटिया को ब्रम्हांड-मंडल और पार-ब्रम्हांड-मंडल दोनों की ही विलायत (शक्ति पर Mastery) दे दूँ''। मैं पहुँची तो थोड़ी देर में पूजा कराने के लिये मुझे ले गये। पूजा के कमरे के बाहर बरामदे में ही पापाजी, उनके गुरू भाई (पं. रामेश्वर प्रसादजी) बैठे थे। दोनों के प्यार का ताल-मेल देखते ही बनता था। पूजा के मध्य उनकी आवाज़ सुनाई पड़ती थी ''भाई सा- जल्दी न करें कहीं आपके प्रेम के औदार्य की तेज़ी बिटिया के कमज़ोर शरीर को सहन न हो सके''। लेकिन अपने बाबूजी का तेज़ोमय-मुख उनके 'बस' करने पर, देखकर मैं अचम्भे में थी। मुझे याद आ रहा है कि मानों दैविक-शक्ति के गौरव से उनका मुख-मंडल देदीप्यमान हो उठा था जिसका पता मुझे अब लग रहा है कि वह तेज सातवीं-ग्रन्थि के स्थान का ही था क्योंकि मैं अभी लिखते समय पा रही हूँ कि यहाँ अद्‌भुत-तेज व्याप्त है इसलिये बाणी मौन हो जाती है। आज एक रहस्य मैं और सरल हुआ पा रही हूँ कि ''उस दिन मेरी आँखों के सामने पूरे दिन अपने श्रीबाबूजी महाराज का वह तेजोमय-मुख मौजूद रहा जबकि वे मुझे पूजा करा रहे थे। जानते हैं क्यों? इसका कारण मैं अभी जान सकी हूँ। क्योंकि उनके दिव्य-तेज में मेरे में समाये तेज को लय हो जाना था ताकि वह शाश्वत एवं सतत् हो जावे। इतना ही नहीं एक बात मैं और पा रही हूँ कि जो ब्रम्हांड-मंडल एवं पारब्रम्हांड मंडल की दैविक-शक्ति पर उन्होंने अपनी इस बिटिया को Mastery दी थी उस परम शक्ति का Force जल्दी से साम्य-गति में आ जावे। मैं तो भाई कुछ कह ही नहीं पा रही हूँ कि कैसी है उनके सानिध्य में हमें पालने वाली वह दिव्य शक्ति जो कुल तेज को मेरे में लय करने को आतुर थी।

एक अद्‌भुत दशा जिसके बारे में मैंने बाबूजी को पत्र में लिखा था कि ''मुझे स्वयं में ऐसी शक्ति प्रतीत होती है कि लगता है कि हिमालय-पर्वत पर यह शक्ति लगा दूँ तो खंड-खंड हो जायेगा''। अब मुझे याद आ रहा है कि वह दशा इस

सातवीं ग्रन्थि के क्षेत्र का ही पसारा था। यह भी पा रही हूँ कि श्री बाबूजी ने इसीलिये इस शक्ति के Force को अपने तेज में शीघ्र विलीन किया था ताकि मनुष्यता के नाते मुझसे कोई ग़ल्ती न हो जावे। एक और परम-रहस्य की प्रत्यक्षता मैं यहाँ पा रही हूँ कि जब बाबूजी ने मुझे पत्र में लिखा था कि ''तुम्हारी बीज दग्ध की हालत है जो लालाजी तुम्हें मुबारक करें''। आज उनके इस लेखन की प्रत्यक्षता मैं इसमें यह पा रही हूँ कि यहाँ पर हर चीज़ बीज रूप में विद्यमान है इसलिये रचना की शक्ति के ठहराव के इस सातवें क्षेत्र के दाने अर्थात् मुख्य केन्द्र बिन्दु की सैर जब बाबूजी ने मुझे पूरी कराई थी तभी बीज दग्ध हो जाने की बात लिखी थी। यही कारण है कि सृष्टि का सारा पसारा, चीज़ या लोग आँखों से तो दिखाई पड़ते हैं किन्तु दिमाग़ में इनका अक्स या शक्ल कोई भी नहीं बनती है क्योंकि इनके अस्तित्व का आभास भी यहाँ नहीं मिलता है। इसलिये इनमें रमाव भी समाप्त हो जाता है। यहाँ की वास्तविक आत्मिक-स्थिति तो यह हो जाती है कि मैंने बाबूजी को लिखा था कि ''अंतर में आपकी Divine मौजूदगी का ही एहसास मिलता है। सच कहूँ तो यह एहसास भी वे स्वयं ही हैं क्योंकि यहाँ यह एहसास उनसे अलग मैं नहीं पा रही हूँ। अर्थात् इस एहसास में मुझे उनका ही स्वरूप व्याप्त मिल रहा है। लेखिनी अपनी भाषा में लिख रही है कि यहाँ की वास्तविक दशा यह है कि मानों सृष्टि का सारा पसारा ईश्वर को ही लेकर है अर्थात् जो कुछ है, वो ही है।

भाई मैं आज समझ नहीं पा रही हूँ कि मेरे बाबूजी ने इतनी परमानन्दमय हालत की याद को मुझे कैसे भूल जाने दिया जो आज 49 वर्ष बाद लेखन हेतु इस क्षेत्र में मेरे समक्ष आकर मुझे अपना हवाला दे रही है। मुझे याद आ रहा है कि मैंने पत्र में बाबूजी को अपना हाल लिखा था कि ''पता नहीं मेरा होश कहाँ चला गया है जो होश में आता ही नहीं है''। यहाँ तक होता था कि रोटी की जगह जलते तवे पर हाथ रख देना एवं अक्सर ही नहाकर सुधि न रहने के कारण बिना कपड़े पहिने ही गुसलख़ाने से बाहर निकलने के लिये साँकल पर जब हाथ जाता है तो एकदम से मानों कोई शक्ति मेरे हाथ को झकझोर कर पल भर को मानों होश दे जाती थी। इतना ही नहीं तवे पर हाथ पड़ने से पहले ही मैंने पाया कि मेरे बाबूजी की प्यार भरी दृष्टि मेरे होश को थपथपा जाती थी। मैंने अपने साथ साये की तरह रहने वाले 'पीर' की सजगता में ही निवास पाया है जो आज भी हर समय मुझमें मेरे स्वरूप की तरह से ही समाया हुआ है।

लिखना तो यह भी पड़ता है कि वास्तव में यह ईश्वरीय-मंडल के लगे, समीप में ही उस परम-शक्ति से ही प्रकाशित देश है। तभी तो मुझे यहाँ ऐसी दशा मिल रही है कि जो मैंने अपने साधन काल के आरम्भ में पत्र में श्रीबाबूजी को लिखा था कि ''ऐसा लगता है कि सूर्य, चंद्र मैंने ही बनाये हैं। धरती से आकाश तक मानों मेरा ही पसारा है''। तब उत्तर में उन्होंने मुझे लिखा था कि यह दशा हिरण्यगर्भ की है। यहाँ से ही जगत् का पसारा है और सूर्य, चंद्र यहाँ से ही प्रकाशित हैं और लिखा कि लालाजी का शुक्रिया है कि तुम्हें हर जगह की यात्रा की अनुभूति (ज्ञान) भी प्रदान करते जा रहे हैं''। आज मुझे सातवीं-ग्रन्थि के क्षेत्र को देखकर लगता है कि तब वह दशा इसी क्षेत्र की थी जिसे उनकी कृपा से आज इतने समय बाद भी मैं प्रत्यक्ष देख पा रही हूँ। आगे मैंने पाया था कि यह दशा भी बाबूजी के तेज में फना हो जाती है और तब हमें ईश्वरानुभूति की दशा में सजीवता मिलने लगती है। फल यह होता है कि दशा को देखते-देखते मानों ख़ुद लापता हो जाते हैं। कदाचित् इसीलिये आज इस पावन-ग्रन्थि की दशा में मुझे लग रहा है कि हर जगह, हर कण में 'वह' ही समाया हुआ है। लेखिनी तो अब यह लिख कर चुप हो जाना चाहती है कि ''जो कुछ है वह (ईश्वर) है''। कुछ ऐसी अद्भुत दशा की अनुभूति भी मुझे यहाँ मिल रही है कि ''यदि सेवक को यहाँ की शक्ति पर स्वामित्व भी दे दिया है तो भी एक अलौकिक विनम्रता उसे सेवकाई के अतिरिक्त स्वामित्व की ओर झाँकने नहीं देती है। यह मेरे बाबूजी की ही सतत् निगाह का फल है कि श्रेष्ठ-गति प्राप्त करने पर विनम्रता हमारा जेवर बन जाती है। अब लग रहा है कि श्री बाबूजी महाराज इस सातवीं ग्रन्थि की दशा का स्पष्ट वर्णन देकर मेरी लेखिनी को मौनता प्रदान कर रहे हैं। भला लेखिनी उनका स्पर्श पाये बिना और दृष्टि में दिव्यता के बिना कैसे इन दैविक-गतियों से भरी हुई ग्रन्थियों की दशाओं का वर्णन लिख पाने में समर्थ हो पाती। वास्तविक बात तो यह है कि उनकी दैविक-इच्छा ही आज वर्षों बाद हर दशा का वर्णन लिख पाने का हौंसला दे सकी है। अब देखें समक्ष में फैला आठवीं-ग्रन्थि का पसारा हमसे अपने बारे में क्या कहने जा रहा है।

अष्टम् ग्रन्थि

क्या कहा जा सकता है इस ग्रन्थि की दशा के पावन-विवरण में जो मेरे बाबूजी, समक्ष में स्पष्ट करके इस लेखिनी द्वारा प्रकट करने जा रहे हैं। ईश्वरीय-क्षेत्र में रिसर्च की गहनता में उनके कार्य की जितनी भी महिमा कही जाये वह कम है, क्योंकि यहाँ की गति शब्दों की गम्यता के बाहर है। कदाचित् इसीलिये उनके दैविक-कार्य की गुरूता एवं क्षमता का वर्णन कर पाने में लेखिनी असमर्थ है परन्तु इसके साथ ही जुड़ी हुई है प्राणीमात्र के प्रति दिव्य-ममत्त्वमई उनकी सजीव-मूर्ति। इसका सटीक साक्ष्य है उनका यह पावन कथन कि "मैं तो प्राणीमात्र के प्रति निवेदित हूँ- यदि लोग मेरे इस निवेदन को स्वीकार करके, सहज-मार्ग साधना को अपनाते हुये मुझे किंचितमात्र सहारा दे दें तो इस माध्यम से मुझे समस्त के प्रति अपने श्रेष्ठ-संकल्प को पूर्ण कर पाने में शीघ्रता हो जायेगी। समर्थ सद्गुरू श्री लालाजी के प्रदत्त श्री बाबूजी, प्राणीमात्र के लिये ईश्वर-प्राप्ति के द्वार खोलकर, अपने ममत्त्व भरे दुलार से हृदयों को दुलराते हुए समस्त के हित अपनी पावन-प्राणाहुति शक्ति का प्रवाह देकर मानों दैविक-नेह का निमंत्रण दे रहे हैं। अवतारों का अवतरण प्रकृति के कार्य-हेतु पृथ्वी का भार उतारने के लिये हुआ और वही उन्होंने किया। जो उन्हें जानकर उनसे चिपक गये उनका दिव्य उद्धार हो गया किन्तु श्रीबाबूजी की दिव्य-विभूति (Divine Personality) तो प्राणीमात्र में ईश्वर-प्राप्ति की प्यास को जागृति देकर, लक्ष्य को प्राप्त कराने हेतु खुद ही अपने ममत्त्वमय प्यार के धागे से चिपकी हुई है। सतत्-आनन्द एवं शाश्वत-शान्ति से भी ऊपर अंतिम-सत्य (भूमा) के पसारे में भी प्रवेश देने का तो मानों उन्होंने बीड़ा ही उठाया है। मैंने देखा है कि मुझे दैविक-गतियों की सैर देकर वे कैसी आतुरता से मेरी शीघ्र उन्नति की राह देखते थे। उन्होंने सहज-मार्ग सिस्टम के माध्यम से मानों समस्त के हेतु अपना दिव्य-संदेश दिया है।

मुझे अलौकिक आश्चर्य यह है कि वर्षों पहले बाबूजी जिन महत्-दशाओं में सैर के साथ ही मुझे लय करते हुये अनन्त के पसारे अर्थात् भूमा के केन्द्र में ले गये थे, आज उनका विवरण लिखते समय जब इनकी हालत को समक्ष में फैला देख रही हूँ तब ही यह पता लग रहा है कि उन्होंने मुझे सारी ग्रन्थियों के उन्मूलन के साथ ही दशा में पूर्ण सैर का सौभाग्य प्रदान किया था। तभी तो आज यह असम्भव भी सम्भव हो सका है कि इनका भेद उजागर कर देने के लिये एक-एक ग्रन्थि की दशा मेरे समक्ष फैलाकर अपनी ही कृपा से धन्य हुई मेरी लेखिनी को दुलार कर

कह रहे हैं कि ''रूक मत, मैं समस्त के हित जो दिव्य वरदान लाया हूँ उससे समस्त के भाग्य उज्जवल कर देने के लिये ही तुझे दैविक-स्पर्श दे रहा हूँ ताकि आध्यात्मिक क्षेत्र में भाग्यशाली होकर लोग सैकड़ों भाग्यों को ईश्वरीय रंग में रंग सकें। लग रहा है कि इस आठवीं-ग्रन्थि की भाषा वैराग्य में डूबी हुई, खोई हुई सी बोल रही है।

लगता है कि यह वैराग्य की हालत का देश है क्योंकि यहाँ संसार की नश्वरता के साथ ही स्वप्नवत् होने का भी एहसास मिल रहा है। यह ज्ञान भी अंतर में उज्जवल हो उठता है कि यह प्रकृति का लीला स्थल है। आज यहाँ की दशा देखकर वैराग्य शब्द की गरिमा का खुलासा जो मैं जान सकी हूँ वह अद्‌भुत है। वैराग्य का अर्थ है बैर (द्वेष)+ राग (लगाव) अर्थात् यह दशा वैर और राग दोनों से ही अछूती है- यही साँचे वैराग्य की पावन दशा है। इतना ही नहीं, इस क्षेत्र में यात्रा करते हुये पावन-वैराग्य की अनुभूति में पगे हुए जब मुझे इसकी परिपक्व अवस्था मिली तब मैं पा रही थी कि एक ऐसी अभूतपूर्व दृढ़ता हमारे अंदर प्रवेश कर जाती थी कि मैं संसार को आनन्द की दृष्टि से देखना चाह कर भी चाह को इसमें जोड़ नहीं पा रही थी कोशिश भी काम नहीं दे पाती थी। मैंने देखा तो बैर (द्वेष) मेरे अंतर को यहाँ यूँ नहीं छू रहा है क्योंकि अंतर में तो स्वयं बाबूजी महाराज समाये हुये हैं और राग को यहाँ यों योग नहीं दे पाती हूँ कि इसे तो मेरे मालिक (बाबूजी) ने स्वयं स्वीकार करके ईश्वर के हवाले कर दिया होता है। यहाँ ऐसा लग रहा है कि मानों आँखों से माया का आवरण हट कर दशा विशुद्धता का स्वरूप ही हो गई है। इतना ही नहीं अत्यन्त हल्कापन है जिसमें से 'पन' का बोझ भी निकाल दिया गया है। दैविक शान्ति मानों मेरा स्वरूप ही हो गई है। मैं यहाँ ऐसे खड़ी हूँ मानों एक भोला बालक खड़ा हो जिसमें कोई विचार या भाव ही नहीं रह गया हो। ऐसी पवित्रता है मानों इसमें डूबकर मेरा स्वरूप इस क्षेत्र का प्रतीक बन गया है।

ऐसी दशा लिखने पर मुझे स्मरण है कि बाबूजी ने मुझे पत्र में लिखा था कि ''तुम माया से तो परे (श्रेष्ठ एवं अछूती) हो गई हो तो अब रह क्या गया है ख़ालिस ईश्वर। अब तुम्हारी हालत के बारे में क्या लिखूँ, देख कर ख़ुश हो लेता हूँ कि मेरी हालत की पुनरावृत्ति तुममें हो रही है''। और लिखा कि ''तुम्हारी हालत Renunciation in pure form की ख़ुशख़बरी दे रही है अर्थात् आत्मिक-दशाओं की दैविक-रसानुभूतियों से भी परे (ऊँचे) हो गई

है''। वास्तव में आध्यात्मिक-साहित्य के लिये श्री बाबूजी ने सहज-मार्ग-सिस्टम को ईश्वरीय-दर्पण के रूप में ही प्रस्तुत किया है। उनकी इस अलौकिक-खोज की देन को ही देखिये कि दशा के हिसाब से मैंने पाया है कि वैराग्य-ईश्वर से सम्बन्धित-दशा है किन्तु Renunciation (वैराग्य) के पावन अर्थात् वास्तविक-रूप की श्रेष्ठ अवस्था में ईश्वरीय-गति में लय रहते हुये भी उस परमानन्द के योग से भी अछूते ही रहते हैं। यही कारण है कि मैंने बाबूजी को पत्र में जब लिखा था कि ''मैं आपको अब अपनी दशा नहीं वरन् लगता है कि दशा की दशा लिख रही हूँ। जानते हैं क्यों? क्योंकि दशा तो मैं लिखती थी लेकिन उसके एहसास से मैं अपने को जोड़ नहीं पाती थी। आज पता लगा कि यह आठवीं ग्रन्थि में फैली दैविक-दशा थी जिसके लिये मानों उसे देखकर लिखना पड़ता था कि लिखने वाला दूसरा था और वह दशा के बारे में लिख रहा था। तभी बाबूजी ने मुझे पत्र के उत्तर में लिखा था कि ''अब माया का कुल आवरण तुम्हारी दशा से हट गया है और यहाँ तक कि उसका साया भी तुम्हें छू नहीं सकता है''। तो कहना यही होगा कि आठवीं-ग्रन्थि के क्षेत्र की सैर समाप्त होते-होते हम माया से ऊपर उठ जाते हैं और एक मासूम बालक के समान पवित्र वातावरण में खड़े हो जाते हैं। सारूप्यता की हद मानों पार हो जाती है।

नवम् ग्रन्थि

भाई, ग्रन्थियों के बारे में लिखने में एक दिव्य-भेद मेरी समझ में और आया है। मानों मैं एक अनुपम-अचम्भा देख रही हूँ। आदि शक्ति का आदि-स्पन्दन हर ग्रन्थि के दाने में अथवा केन्द्र-बिन्दु में मन्द-गति से मौजूद है। यह स्पन्दन हर point के मुख्य केन्द्र में मानो जागृति देता रहता है। श्रीबाबूजी की कार्य-क्षमता एवं दिव्य-शक्ति-क्षमता की बारीकी देखकर मेरे होश उड़ रहे हैं। वे हमारे अंदर लक्ष्य-प्राप्ति की जागृति को हर point एवं हर ग्रन्थि के आदि-स्पन्दन से योग देते चलते हैं जिससे Points एवं ग्रन्थि की पूरी हालत हममें लय होती चलती है।

मैं पा रही हूँ कि ये नवीं ग्रन्थि मुझे मानों सालोक्यता की दशा के फैलाव के समक्ष ले आई है। ऐसा लग रहा है कि मेरा जन्म किसी अन्य लोक में हो गया है जहाँ मेरा प्रिय बसता है। लेकिन यहाँ एक बात यह पा रही हूँ कि प्रिय के लोक की प्रियता में दर्शन की चाह निरंतर चैन नहीं लेने देती है। किस लोक में, और कौन हमें यहाँ ले आया है यह कचोटन अंतर में शान्ति को नहीं ठहरने देती है। मेरा प्रिय मुझे चाहिये ही ऐसा हठ जी में समा जाता है यद्यपि उनकी मौजूदगी की अनुभूति से दिल भरा-भरा रहने लगता है। तबियत कुछ ऐसी झुकी-झुकी सी लगती है कि हर समय यही प्रतीत होता है कि मानों मैं उनकी ही इच्छा की सेवक हूँ। ठीक भी है सेवक को तो बस सेवकाई ही से काम है। उनका लोक क्या मिला है रहने को मानों उनकी मौजूदगी का सतत् आभास अक्सर मुझे दीवाना बना जाता है। क्या लिखूँ और कैसे लिखूँ ग्रन्थि के पसारे की यात्रा की अनुभूति के बारे में। लग रहा है कि हर पग मानों मुझसे कुछ कहना चाह रहा है। जानते हैं क्यों? क्योंकि हर उठा हुआ डग मानों दर्शन की सामीप्यता को पा रहा है। अब याद आ रहा है कि इस हालत की अनुभूति में पगने पर ही मैंने पत्र में बाबूजी को लिखा था कि हालत क्या है मानों ''जित देखूँ तित श्याममई'' ही दिखाई पड़ रहा है। तबियत में ऐसी विनम्रता समाई लगती है कि छोटा-बड़ा कोई भी सामने हो वह (विनम्रता) आत्म-निवेदन की ही दशा में डूबी रहती है। इसका कारण आज यहाँ की हालत लिखते हुये ही पता लगा है कि मैंने पहले लिखा है चीज़ या इनका अक्स कुछ भी नहीं है बस एक ही समाया लगता है। बस यहाँ की हालत कह रही है कि वह एक अब तेरे सामने प्रकट होने जा रहा है। यही कारण है कि यहाँ की हालत कदाचित् इसीलिये आत्म निवेदन का ही स्वरूप होकर प्रियतम (ईश्वर) के चरणों में बिखर गई है। हर ग्रन्थि की दशा अनुपम है- लेखन फिसल-फिसल जाता है। यहाँ स्वयं

का ऐसी शुद्धता का रूप हो जाता है कि मानों यह विशुद्ध हालत का ऐसा आईना है जिसमें किसी में भी कोई अवगुण का अक्स पड़ने की गुंजाइश ही नहीं होती है। जानते हैं क्यों? क्योंकि यहाँ की हालत को ईश्वरीय-विशुद्धता का शीशा कह सकते हैं जो गुण, अवगुण सबके अक्स से परे है। तभी तो मैं यहाँ देख रही हूँ कि ईर्ष्या, द्वेष एवं ग़ैरियत का भाव सब कुछ मानों तबियत की शुद्धता में समा गया है। कदाचित् ईश्वरीय-विशुद्धता का पसारा होने के कारण अंतर, बाहर में ईश्वरीय-आविर्भाव की अनुभूति हमारे जी को परमानन्द में डुबोये रखती है। इतना ही नहीं यहाँ हमारे अपने होने का भाव भी मानों इस परमानन्द में लय होता जा रहा है। कदाचित् इसीलिये मैं अपने होश को भी सँभाल पाने में असमर्थ हुई जा रही हूँ। फिर आगे कैसे और क्या लिख पाऊंगी, पता नहीं है।

अरे यह क्या! इस ग्रन्थि की दशा का अनुभव भी हमें विस्मृत होता जा रहा है। किन्तु क्या कहूँ अपने बाबूजी की कृपा के बारे में कि जब सब कुछ विस्मृत हो गया है तो लगता है कि अपने कुल में उनका दिव्य-स्वरूप अपने होने का भाव देकर मानों हमें पुनः पुनः जागृति देता है जिससे हम शेष हालत का भी यहाँ अंदाज़ लेते चलें। कितना प्यार मैं अपने बाबूजी का पा रही हूँ कि जब मेरे होने के भाव (अहं) को उन्होंने स्वयं (दैविक-सौंदर्य) में आत्म-सात कर लिया तो फिर यहाँ का और अनुभव देने के लिये स्वयं की दिव्य झलक भी भर दी है-ताकि यह लेखिनी रूक न जाये।

सच तो यह है कि अब नवीं ग्रन्थि का कोष मेरे समक्ष उज्जवल होकर बिखर गया है- मानों मुझसे कह रहा है कि "मेरी असलियत तेरे प्रिय (बाबूजी) की दिव्य सहज-मार्ग शिक्षा एवं दैविक-शक्ति द्वारा उज्जवल होकर उनके ही समर्पित हो गई है। इसलिये जो मेरा था (दशायें) वह तेरे लिये बिखर गया है। समेट ले इसे और अपने प्रिय (दिव्य-विभूति) श्री बाबूजी के ऊपर ही सब न्यौछावर करके उनमें ही लय हो जा"। नवीं ग्रन्थि ने ऐसी प्यार भरी सिखावन के साथ ही पूर्ण शक्ति भी प्रदान कर दी है जिससे सालोक्यता की प्रिय हालत को भी विस्मृत कर दिया है- मानों यह कुल दशा एवं शक्ति मुझ में ही आत्म-सात होकर बाबूजी में लय-अवस्था पा गई है। कैसा दिव्य-दृश्य समक्ष में था किन्तु मेरी विस्मृत-अवस्था में ही विलीन होकर मेरे लिये यह चेतना छोड़ गया है कि दसवीं ग्रन्थि का आँचल मानों मुझे अंक में समेट लेने के लिये कुल क्षेत्र की दशा को मेरे समक्ष बिखेर गया है।

दशम् ग्रन्थि

अब देखें कि मेरे बाबूजी पूर्व-अनुभव को दोहराते हुये क्या चेतना दे रहे हैं जिसके सहारे समक्ष में फैला दसवीं ग्रन्थि का पसारा मेरे लिये अपना क्या भेद खोल रहा है। चेतना ने आँखें खोली तो बोल उठी कि यहाँ अंतर-मन को मोह लेने वाला कैसा समां है। दसवीं ग्रन्थि का फैला आँचल मानो मेरे समक्ष मेरे जीवन-सर्वस्व श्रीबाबूजी के प्यार के सदृश मुस्कुरा रहा था और मैं अवाक् हुई खो चुकी थी खुद को, भूल गई थी बाबूजी को और भूल गई थी समक्ष में फैले ग्रन्थि के फैलाव को, मानों यह भूल ही यहाँ की असलियत अथवा सब कुछ ओझल हो जाना ही इस देश का मिजाज है। तभी एकाएक मानों मेरे जीवन-सर्वस्व श्रीबाबूजी के प्यार भरे आँचल ने मेरा स्पर्श किया और कहा ''सँभाल ले होश को। अभी देखा ही क्या है जो होश उड़ा बैठी। बाबूजी राह देख रहे हैं तेरी''। बस उस दिव्य-चेतना ने ही मुझे मालिक में कुछ इस तरह से समर्पित कर दिया कि मेरी चेतना अब मानों श्री बाबूजी के दिव्य-मुखारबिन्दु को ही निहार रही है। यह भी मैंने दसवीं ग्रन्थि के पसारे में देखा कि उनकी दिव्य-दृष्टि ने एक दिव्य-नूर मेरे में उतार दिया। मानों कह रहे हैं कि ''यह दिव्य-नूर ही तेरे अस्तित्व को सँवार कर दिव्यता से निखारता हुआ तेरे वास्तविक स्वरूप को सँवार लायेगा। और तब? दूरी समाप्त हो जायेगी इस लोक के अधिष्ठाता से। दैविक-लक्ष्य मुस्कुरा उठेगा तुझमें''।

अब दसवीं ग्रन्थि की सजगता (Alertness) यहाँ की कौन सी छुपी हुई दिव्य-दशा का रहस्य हमारे सामने स्पष्ट कर रही है। भाई यह सत्य तो हमारे लिये प्रत्यक्ष ही हो चुका है कि नवीं ग्रन्थि के स्पष्ट होते ही वहाँ की दशा के साथ ही उस स्तर की दैविक-शक्ति भी हममें लय हो जाती है। तभी मेरे बाबूजी की मौजूदगी का एहसास जो समय-समय पर वे ही हमें देते चलते हैं, अब इस पुस्तक के लेखन के लिये मेरी लेखिनी को उन्मुख कर रहा है। अब एक यह विशेषता मैं पा रही हूँ कि सालोक्यता की दशा की अनुभूति यहाँ के समां में कुछ ऐसी घुल-मिल जा रही है कि प्रियतम का लोक मानों हमारा अपना घर ही हो गया है। इतना ही नहीं ईश्वरीय-सामीप्यता मानों हमारा लिबास ही बन गई है। कदाचित् यही कारण है कि उसके लोक में रहकर हम वहाँ की स्पष्टता को समक्ष में देख पाते हैं और नीचे देखने का विचार ही समाप्त हो जाता है। मैं ऐसा पा रही हूँ कि कभी हमें ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे श्री बाबूजी मुझे वहाँ की शक्ति पर स्वामित्व का आभास भी

दे रहे हैं परन्तु सेवक, सेवक ही है और स्वामी, स्वामी ही होता है। आश्चर्य तो यह है कि वे हमें ऐसी दैविक-स्थिति में कैसे सँभाले रखते हैं कि दीन और दुनियाँ के कार्य दोनों ही सुचारू रूप से सम्पन्न होते जाते हैं। वास्तव में अभ्यासी को अनन्त की ओर ले जाने का बीड़ा उठाने वाले बाबूजी दैविक-लाल के रूप में ही धरा पर अवतरित हुये हैं। समय उनकी बलिहारी ले रहा है। युग मानों उनके ही गुणानुवाद के परमानन्द में ही समाधिस्थ हो गया है। प्रकृति उनकी ही धुन पर थिरक रही है दिव्य-सतत्-शान्ति के स्पन्दन में डूबकर। यहाँ का समां बता रहा है कि धरा पुलकित हो रही है- आकाश नैंनों में नीर भरकर उनके दिव्य-चरण-द्वय का स्पर्श पाकर धन्य हो रहा है। वातावरण मानों साम्य-गति में समाकर अपना अस्तित्व ही भुला बैठा है।

नौंवीं-ग्रन्थि के दैविक-पसारे की दशा को आत्मसात् कर लेने के बाद अब इस देश में लग रहा है कि मालिक ने मेरा आत्म-निवेदन स्वीकार कर लिया है और ईश्वरीय-देश में रहने की आज्ञा दे दी है मानों सदा के लिये अपने ही समीप बने रहने की गति भी प्रदान कर दी है। अब अंतर ऐसा भरा-भरा लग रहा है यहाँ कि मानों अब कुछ भी पाना शेष नहीं रह गया है। मुझे स्मरण है कि मेरी ऐसी हालत के समय सम्भवतय: पैंतालिस वर्ष पहले श्रीबाबूजी ने मुझे पत्र लिखा था इसी दशा के संकेत में कि ''लालाजी का शुक्रिया है जो तुम्हें यहाँ तक लाये हैं जहाँ अब तक शायद ही कोई पहुँचा हो, ईश्वर ने चाहा तो उसका नज़ारा भी तुम्हें नसीब होगा।''

अब मैं इस स्वाभाविक-गति का भी आभास पा रही हूँ कि अंतर में एक ईश्वर-प्रदत्त Confidence स्वत: ही पलने लगा है। किन्तु यह Confidence हमें अपने अहंभाव पर नहीं होता है बल्कि अंतर में ईश्वरीय-शक्ति के निरंतर अहसास एवं उसकी मौजूदगी के एहसास पर ही होता है। जानते हैं ऐसा क्यों होता है? क्योंकि जब अपने स्वरूप का स्थान ईश्वरीय आविर्भाव ले लेता है तो उस स्तर तक का अहं भी समाप्त हो जाता है। यही कारण है कि इस स्वत: Confidence का ठिकाना Divine ही होता है। अब सांसारिक रहनी का क्या कहूँ वह तो अहं भाव से परे (अछूती) एवं गुण-अवगुण से रहित अपने परमानन्द में ही डूबी हुई मोहित सी रहती है। एक आश्चर्य Divine का और होता है कि श्री बाबूजी ने अभ्यासी को ईश्वर-प्राप्ति का महान्-लक्ष्य दिया है इसलिये ईश्वरीय-देश में रहते हुये भी लक्ष्य-प्रदान करने वाले अपने बाबूजी का एहसास ही मानों हमें ऐसी श्रेष्ठ-

गतियों के एहसास की सजगता देता है। अब देखें कि दसवीं-ग्रन्थि की अंतिम-चरण की दशा क्या बोल रही है- यहाँ तक होता है कि श्रीबाबूजी की प्यार भरी चर्चा करते हुए भी मुझे लग रहा है कि मानों मेरा मुख नहीं बोल रहा है और मेरा सोच भी उससे अलग है बस कान सुन रहे हैं। ऐसा लगता है कि यहाँ प्रियतम से ऐक्य की दशा भी लय होना शुरू हो जाती है। मुझे स्मरण आ रहा है कि कोई दूसरा एहसास न आने पर ही मेरी दशा बोल उठी थी कि ''अपने सिजदे के सिवा, ग़ैर का सिजदा है हराम''। लेकिन यह क्या? यकायक माहौल ही बदल गया-मानों अब तक की सारी हालत इस ग्रन्थि के मध्य के दाने में ही गड़प (डूब) हो गई है। किन्तु जीवन-सर्वस्व श्रीबाबूजी का प्यार मुझमें मानों सतत् रूप से सजगता भर रहा था कि आगे बढ़ो। इस ग्रन्थि की Divine शक्ति में अब मानों बचे हुये जीवत्त्व को भी श्रीबाबूजी की अपनाइत पूर्णरूप से लय करने में तत्पर हो गई है ताकि कभी अपने होश में आने पर भी मुझे अपना पता न मिल सके। इसके बारे में ही शायद पत्र में मुझे बाबूजी ने लिखा था कि ''कुछ नहीं है, तो कुछ के पीछे कुछ है चाहे सूक्ष्मातिसूक्ष्म है जिसे माइनस होना है।'' वह अलौकिक-दैविक-आश्चर्य वर्षों बाद आज भी मेरे समक्ष है कि बाबूजी का पत्र मिलते ही अहं-भाव का वह बेहोश जीवत्त्व भी गलकर (माइनेस) मिटना शुरू हो गया था। यह सत्य हमेशा ही मैंने स्पष्ट हुआ पाया है कि हमेशा जब भी बाबूजी किसी चीज़ के लिये लिखते थे कि इसे भी जाना है तो शाहजहाँपुर में उनके विचार में आते ही तुरंत ही वह चीज़ मिटना शुरू हो जाती थी मानों हमें आगाह करती थी कि दिव्य आदि-शक्ति के वे प्रतीक हैं एवं उसकी क्षमता के वे स्वामी हैं। अरे! यह क्या दसवीं ग्रन्थि का समां ओझल होते-होते मानों ईश्वर-नाम के महत्त्व को मुझमें विलीन कर गया था। अब ग्यारहवीं-ग्रन्थि के भेद को समस्त के हित स्पष्ट कर देने के लिये श्रीबाबूजी ने मेरी लेखिनी को अपना Divine स्पर्श देकर मानों मुझे ग्यारहवीं-ग्रन्थि के क्षेत्र में प्रवेश दे दिया है और समक्ष में वहाँ के समां को फैलाकर उसे पढ़ लेने की सजगता भी प्रदान कर दी है। तो भाई देखिये यह लेखिनी इस क्षेत्र का क्या दैविक-विवरण लिखने जा रही है क्योंकि दसवीं-ग्रन्थि की कुल दशा वहाँ की शक्ति के सहित ही मानों मुझमें आत्मसात् हो गई है।

एकादश ग्रन्थि

श्रीबाबूजी का कथन है कि ''समर्थ चलाने वाले के बिना चलने का मज़ा नहीं आता है।'' आज मुझे इसका जीता-जागता उदाहरण बनाकर श्रीबाबूजी ने अपने कथन को प्रत्यक्ष भी कर दिया है। अपनी Divine Research की प्रारम्भ से लेकर अंतिम-सत्य (भूमा) तक की यात्रा को अपने सहज-मार्ग System द्वारा पूर्णता प्रदान करके वे मानों स्वयं भूमा के प्रतीक बनकर पृथ्वी पर प्रत्यक्ष हो गये हैं। कैसा अनूठा अचम्भा आज मैं लिखने जा रही हूँ कि आदि-शक्ति का आदि-स्पन्दन (क्षोभ) हर ग्रन्थि के मध्य के दाने में मन्द-गति से मौजूद है। यही स्पन्दन ग्रन्थि के मुख्य-केन्द्र में जागृति (सजगता) देता रहता है। श्री बाबूजी महाराज की कार्य एवं शक्ति-क्षमता की बारीकी देखिये कि अपनी प्राणाहुति के प्रवाह द्वारा हम अभ्यासी के हृदय में सुषुप्त-अवस्था में हुई ईश्वर प्राप्ति की चाह को जागृति दे देते हैं। क्रमशः उन्नति-पथ पर बढ़ते हुये हमारे अंतर की जागृति को, हर point की, हर क्षेत्र की, हर Region के मुख्य-केन्द्र बिन्दु में मौजूद उस आदि-जागृति से योग दे देते हैं ताकि हर Point, हर क्षेत्र एवं हर Region की हालत खुलती जाती है और हम अपने बाबूजी के प्रेम में लय रहते हुये हर हालत में लय होते जाते हैं-मानों हालत ख़ुद हमारे में समाती जाती है। भाइयों अब ग्यारहवीं-ग्रन्थि का मुख खुल गया है और यहाँ की हालत समक्ष में खिल उठी है। तो सुनिये।

यहाँ पग रखते ही मैं देख रही हूँ कि यह अनन्त-अविनाशी का पसारा ही हमें याद कर रहा था। अब सोच यहाँ यही आने लगता है कि जब उसका पसारा ऐसा है तो भला वह कैसा होगा-और खोज जी को लग गई है। जानते हैं क्यों? क्योंकि ऐसा लग रहा है कि यहाँ हर ज़र्रे में कशिश है। वह भी इतनी मधुर कि मानों उसके अनन्त-प्यार का स्पर्श ही मुझे दुलार कर कुल में मिला रहा है। कदाचित् इसीलिये मैं पा रही हूँ कि यह कशिश (Divine आकर्षण) ही इस क्षेत्र की हर चीज़ अर्थात् प्यार, शक्ति एवं दैविक माधुर्य सभी कुछ मुझमें निरंतर प्रवेश पाती जा रही है। यही कारण है कि हम भक्ति, ज्ञान सबसे ही अछूते होकर अब Divine कशिश के सहारे ही बढ़ना शुरू कर देते हैं और मैं? ऐसी विभोरावस्था में एकटक खड़ी रह गई हूँ कि मानों इस क्षेत्र में जिसमें यह हालत प्रवेश पाती जा रही है वह मैं नहीं हूँ। फिर भला आप ही बतायें कि मैंने यह क्यों और कैसे लिखा कि कशिश द्वारा इस क्षेत्र की हालत एवं शक्ति सभी कुछ मुझमें प्रवेश पाती जा रही है? तो फिर सुनिये! यह भेद भी क्यों भेद ही बना रहे। वास्तविकता यही है कि जैसा श्रीबाबूजी ने मेरे

पिताजी को लिखा था कि ''आपकी यानी दुनियां की कस्तूरी तो अब मर चुकी है- अब जो है वह मेरी है- अर्थात् इसमें अब जीवत्व का साया भी शेष नहीं रह गया है''। उनके इस कथन की यथार्थता को इस ग्रन्थि में फैली दशा ही प्रगट कर रही है-अर्थात् वास्तविक-स्वरूप जो ईश्वर ने भेजा था वही ऐसी दिव्य-दशाओं को ग्रहण कर पाने योग्य होता है, और भौतिक-रूप तो दृष्टा-मात्र ही बनकर रह जाता है किन्तु यह दैविक-सौभाग्य श्रीबाबूजी की दिव्य-क्षमता ही हमें प्रदान करती है कि दशा की अनुभूति करने की क्षमता, अनुपम-दैविक-गतियों की परम-अनुभूति के परम-आनन्द का योग दृष्टा-मात्र होते हुये भी हम पाते हैं। कैसा दैविक-आश्चर्य है कि यह विराट् एवं वृहत्-दैविक-योग भी सहज-मार्ग में श्रीबाबूजी ही हमें प्रदान करते हैं।

भाई, लेखनी तो उठ गई है लेकिन यह क्या कि उपरोक्त समां के लेखन के बाद सुधि ने करवट ली तो पाया कि मानों सब कुछ शायद यहाँ की दैविक-कशिश ने मुझसे लेकर स्वयं में विलीन कर लिया है। बस शेष रह गई है तो एक गहन-कुरेदना एवं अनजाना-दर्द, अनछुई पीर जो शायद मुझे टटोल रही थी आप-बीती कहने के लिये। यहाँ एक अद्भुत बात और देखने को मिलती है कि शान्ति, चैन, दर्द, पीर एवं तड़प यह सब मानों सम-रस (एक सां) हो जाते हैं। नितान्त विपरीत दिशा होते हुये भी जैसे एक ओर परमानन्द की रसानुभूति, चैन और दूसरी ओर पीर, तड़प सबका अर्थ एक साँ ही प्रतीत होता है। शायद आप इसका कारण भी जानना चाहेंगे-तो सुन लीजिये- यहाँ प्रिय से विछोह की आंतरिक-पीर, मिलन के हेतु तड़पता हृदय ईश्वरीय-मिलन की इतनी निकटता पा जाते हैं कि मिलन के पावन-सतत एहसास के कारण हमें तड़प एवं मिलन का आभास एक सा ही प्रतीत होने लगता है। या यों कह लें कि भक्ति, प्रेम तड़प, मिलन कोई भी शब्द हमारी दशा तक पहुँच ही नहीं पाते हैं उसे छू ही नहीं पाते हैं। या यों कहें कि दिव्य-साक्षात्कार की सफलता की प्रतीति में सब कुछ विलय हो जाता है। एक बात यहाँ यह भी लिखना जरूरी है कि इस अनन्तता के क्षेत्र में यदि किसी चीज़ को यहाँ का स्पर्श मात्र भी मिल जाये तो वह भी अनन्तता को छू लेता है जिसे मानव-शरीर को सहन कर पाना असंभव है। आज मुझे याद आ रहा है कि अधीरता की ऐसी ही चरम-सीमा को छू लेने पर मेरी हालत के लिये श्री बाबूजी ने पत्र में मुझे लिखा था कि ''अच्छा यही होगा कि जहाँ तक हो सके तुम पूजा की कोठरी में कोच के सामने बैठी रहो। हालत, जब ज़ब्त से बाहर होने लगे तो लालाजी ने तुम्हारी संरक्षा की जिम्मेदारी

ले ली है''। क्या कभी धरा ने ऐसी महान्-विभूति का चरण-स्पर्श पाया होगा? नहीं, ऐसी मिसाल के लिये तो स्वयं 'भूमा' को ही भू (पृथ्वी) पर आना पड़ा है। अब तो आप जान गये होंगे कि यहाँ हर दशा क्यों साम्यावस्था में ही रहती है। यह सत्यता दिखाने के लिये ही मेरी मिलन की अधीरता को बाबूजी ने इस ग्रन्थि के अनन्त-समां का दर्शन दिखाने के लिये ही उभारा था क्योंकि इस क्षेत्र में जो भी दशा होगी वह हद के बाहर अनन्त का ही Touch पायेगी। उन्होंने दो दिन के बाद ही इस ग्रन्थि के क्षेत्र के मुख्य-केन्द्र में मेरी सारी दशा को लय कर दिया था। मैंने उन्हें लिखा भी यही था कि ''बाबूजी दो दिन बाद ही मुझे यह क्या हो गया है कि मेरी दशा ही क्या बल्कि मैं ही कुल स्पन्दनहीन होकर रह गई हूँ। धड़कन सुनती हूँ लेकिन स्पन्दन का बोध ही नहीं होता है। हाथ, पैर से काम करती रहती हूँ लेकिन मानों मशीन बनकर रह गई हूँ। मेरा कुल System खिल गया है लेकिन यह कैसा खिलापन है इसका मुझे ज्ञान नहीं है''। लेकिन इतने समय बाद मैं इसे आज लेखन के समय समझ सकी हूँ। जानते हैं क्यों? क्योंकि साधन काल में मेरे बाबूजी को मुझे हर दशा, हर केन्द्र, हर रीजन की यात्रा कराते हुये, शक्ति से पूरित करते हुये बस लक्ष्य में लय कर देने की धुन थी-परन्तु आज वे समस्त को हर दशा का, हर रीजन के समां एवं शक्ति का ब्यौरा देना चाहते हैं तभी तो मेरी लेखिनी भाग्यशालिनी कहलायेगी। हाँ तो आगे सुनिये, जब इस क्षेत्र की सारी दशा को मुझमें निखार दिया तभी फिर मध्य के दाने में सब कुछ लय हो जाने पर जब उन्होंने मुझे झकझोरा तब मैंने पाया कि मानों चारों ओर अब असल ही असल की हालत का क्षेत्र व्याप्त था। होश आने पर मैंने पाया कि श्रीबाबूजी ने मुझे बारहवीं-ग्रन्थि के क्षेत्र में प्रवेश दे दिया था। सच तो यह है कि अब इनके विषय में ग्रन्थि शब्द लिखने का मन नहीं होता है, बल्कि ये तो श्रीबाबूजी महाराज के मानव-मात्र के प्रति अनुपम प्यार एवं दिव्य-प्रेम के अन्वेषण की गरिमा के प्रतीक हैं।

काश! हम सभी उनके इस दिव्य-प्रेम में अपने आंतरिक ईश्वरीय प्रेम के प्रवाह का योग दे सकें तो इन दिव्य-गतियों के परमानन्द रस में सराबोर होकर हमारा मानव-जीवन धन्य हो जायेगा। इसप्रकार हम उनके दैविक-महा-संकल्प को पूर्ण करने हेतु इस दैविक-कार्य में सत (ईश्वरीय) युगी सौंदर्य का योग दे सकेंगे।

द्वादश ग्रन्थि

कदाचित् अपने बाबूजी महाराज की ही इच्छा में डूबी मेरी लेखिनी आज बारहवीं-ग्रन्थि की दशा का विवरण देने से पहले सारूप्यता की दशा की मुख्य एवं विभिन्न अवस्थाओं के बारे में लिखना अनिवार्य समझ रही है क्योंकि यहाँ के समाँ में लग रहा है कि मौन हुई Divine Power में अब तक की जो भी आध्यात्मिक-दैविक-दशाओं की कमाई थी वह सब लय होती जा रही है अर्थात् सामीप्यता के प्रेमानन्द में नहाई विशुद्ध-दशा, सारूप्यता में स्वयं का तद्-रूप हो जाना यानी ईश्वरीय-निकटता का वरदान, भक्ति, प्रेम और इसके द्वारा हममें उतरी पावन-लय-अवस्था की अनुभूतियाँ। लय-अवस्था के फलस्वरूप तद्रूपता के साथ तद्-शक्ति का भी हममें समावेश होते जाना, सालोक्य के परमानंद में होश खोई हुई परम-दशा की गरिमा से गौरवान्वित हुई फ़नायें-फ़ना की दैविक-देन की हालत सभी कुछ यहाँ स्वत: ही लय होने लगती है। जानते हैं क्यों? क्योंकि अब मुझे यह पता लग रहा है कि यहाँ की मौन शक्ति का अर्थ कहीं न कहीं आदि-शक्ति से योग के छीटें पाने लगा है।

अब सुनिये, श्री बाबूजी ने बहुधा हर स्थान एवं Point पर सारूप्यता शब्द का प्रयोग किया है। मैंने भी उन्हें अपने पत्रों में शायद हर Point की ही सैर की हालत में, हर रीजन में लिखा था कि ''अमुक-दशा अब मानों मेरा स्वरूप ही हो गई है'। इसलिये मुझे यह आवश्यक जान पड़ता है कि सारूप्यता की दशा का अर्थ विभिन्न-आत्मिक-दशाओं के लिये कैसे प्रयोग किया गया है जबकि मुख्य सारूप्य की दशा तो तद्रूप हो जाना ही है। तो सुनिये सर्वप्रथम जब मैंने भौतिक-रूप में सारूप्यता शब्द का प्रयोग किया था तो मुझे लगता था कि मेरे रूप में उनका ही दैविक-रूप समाया हुआ है। फिर इसे चाहे कोई बाबूजी कहे, चाहे ईश्वर कहे मानों मुझ पर कोई असर नहीं पड़ता था क्योंकि जब हमारी भौतिक-दृष्टि उनके (बाबूजी के) भौतिक-दिव्य स्वरूप के सामीप्य की अनुभूति की प्रियता में पग जाती है तो खुद को ऐसा विस्मृत कर बैठती है कि अपने भौतिक-रूप, रस, गंध सबसे हमेशा के लिये मुक्त कर देती है लेकिन आगे जब इस अवस्था की सायुज्य (लय) अवस्था आ जाती है तबसे हमें स्वयं के अंदर Divine स्वरूप यानी बाबूजी के स्वरूप की प्रतीति भी नहीं होती है बल्कि हमें लगता था कि हृदय में Divine के आविर्भाव में मैं समा गई हूँ फिर रूप की अनुभूति कौन करे अर्थात् यहाँ से ही लय-अवस्था यानी फ़नाइयत का वरदान हमें मिल जाता है। यह भेद मैं

अब पा रही हूँ कि हर दशा में लीन रहते हुये वह दशा हमारे कण-कण में समाने लगती है, ज़र्रा-ज़र्रा उस दशा से निखर उठता है यानी दशा के निखार से निखर उठता है तभी मैंने श्रीबाबूजी को लिखा था कि ऐसा लगता है कि दशा ही मेरा स्वरूप हो गई है।

ऐसे ही जब बारी आई हार्ट-रीजन की सैर समाप्त हो जाने की तब आई दैविक-विराट् के आभास की सतत्-हालत। तब मैंने पाया कि श्रीबाबूजी उस दिव्य-विराट् अर्थात् (Mind Region) में अपनी कृपा से सतत् ही लय करना शुरू कर देते हैं। एक बात यह भी अब मेरी समझ में आई है कि जब अपने होने के भाव का अक्स दशा पर नहीं पड़ता है तो फिर समक्ष में सच्चाई ही फैली लगती है अर्थात् ईश्वर सर्वव्यापी है यह दशा हमें प्रत्यक्ष अनुभव होने लगती है। इतना ही नहीं जब इस स्तर तक हमारी लय-अवस्था इस विराट्-दशा में हो जाती है कि हमारा अस्तित्व उसमें से उभर ही नहीं पाता है बस तबसे Mind Region अर्थात् हिरण्य-गर्भ की विराट् गति हमें अपने में छुपा लेती है अर्थात् लय कर लेती है तभी मैंने श्रीबाबूजी को पत्र में लिखा था कि "अब तो दिव्य-विराट्-गति ही मेरा स्वरूप बन गई है। सारा ब्रम्हांड मानों मेरी शक्ति से ही उत्पन्न है। सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी सब मेरी शक्ति से ही रोशन है"। इतने लम्बे समय बाद आज मैं उपरोक्त लेखन के समय ही इस दशा का कारण समक्ष में देख रही हूँ।

अभी बाबूजी आपको क्या बताना चाहते हैं यह तो मैं नहीं जानती हूँ किन्तु लेखिनी उठी है तो मुझे भी पढ़ने को मिल जायेगा जिससे लम्बे समय के अन्तराल की दशाओं का पूर्ण ज्ञान मुझे मिल जायेगा क्योंकि उस समय तो मेरे बाबूजी ने मुझे हर हालत के परमानन्द-रस में ही डुबोया और लय कर दिया था ताकि कितने ही रूप (Coverings) बदलते हुये, ईश्वरीय-रंग में रंगते हुये दिव्य साक्षात्कार को पा सकूँ।

अब आती है कदाचित् अंतिम सारूप्यता की दशा अर्थात् जो श्रीबाबूजी ने ईश्वर-प्राप्ति का परम-लक्ष्य अपने सहज-मार्ग System में रखा है उसकी तैयारी की बारी अर्थात् ईश्वरीय-देश में मुझे रहनी के योग्य बनाने की तैयारी। अब क्या कहूँ यहाँ की दिव्य-बयार की सिहरन के बारे में। यहाँ तो ऐसा लगता है कि अपने ही प्रिय का गाँव आ गया है। इसका पता मुझे बाबूजी ने कैसे दिया था यह मैं आपको अवश्य बताऊँगी। उन्होंने लिखा था कि "घर तो तुम पा गई हो अब शेष क्या है? घरवाले का दर्शन उस दिव्य-

साक्षात्कार को भी श्री लालाजी ने तुम्हें बख़्शने का मन बना लिया है और फिर एक दिन! ईश्वरीय-सारूप्यता की अनुभूति में भी जब बाबूजी ने मुझे लय-अवस्था प्रदान कर दी तबसे ऐसा लगने लगा कि उस शक्ति में भी मुझे प्रवेश मिल गया है। कदाचित् बारहवीं-ग्रन्थि के स्पष्टीकरण की दशा पाने पर ही गीत के रूप में मेरा अंतर गुनगुना उठा था कि ''शक्ति के रूप में जीते हैं और क्या चाहिये''। कबीर ने इस दशा को ''मेरा राम मैं उनकी दुल्हनियाँ'' के रूप में कह पाया था। मैं क्या लिख सकूँगी इन दैविक-ग्रन्थियों में छुपे हुये दिव्य-दशाओं के ख़जाने के बारे में क्योंकि अब देख रही हूँ कि यहाँ बाबूजी ने कुछ क्षणों में ही मुझे दिव्य-साक्षात्कार की हालत सहित ईश्वरीय-केन्द्र में डुबकी देकर कुछ इसप्रकार से निकाल लिया कि मुझे लग रहा है कि मानों ईश्वर की गोद में देकर मुझे निकालकर सतत् एवं सहज-धारा में प्रवेश दे दिया है मानों कुल अस्तित्त्व समाकर मात्र Identity ख़ुद मुझे बता रही है कि तू है लेकिन अपने बाबूजी में ही समाकर रह गई है। यानी अब श्रीबाबूजी का कथन स्पष्ट हो जाता है कि ''हम वैसे ही हो जायें जैसा हमें होना चाहिये''। भाइयों यह ग्रन्थि समाप्त होते-होते यह दृश्य सामने बिखेर रही है कि अब यहाँ सायुज्यता की दशा ही शेष रह गई है और शेष भी बेहोश है। हाँ एक विशेषता लिखना है कि यहाँ की सादगी ही इसका सौंदर्य है अर्थात् असल ही असल का पसारा है! लेकिन अब मेरी लेखिनी के स्थान पर मानों मेरे बाबूजी का वरद्-हस्त मुझे अपना दैविक-स्पर्श देकर मेरे होश को जगा रहा था कि ''ज़रा होश में आकर देख कि बाहें फैलाये तुझे कौन बुला रहा है। कौन कशिश तुझे नेह-निमंत्रण दे रही है''। तो लगा कि होश ने ख़ुद को सँभाल कर जब समक्ष में देखा तो पाया कि तेरहवीं-ग्रन्थि के देश का प्रवेश मुझे बुला रहा था।

त्रयोदश ग्रन्थि

इस तेरहवीं ग्रन्थि में प्रवेश तो बाबूजी ने दे दिया है किन्तु होश ने वापस लौट कर देखना उचित नहीं समझा है। ख़ैर क्या करना है मुझे उसको लेकर मेरा होश तो मेरे समक्ष ही बाबूजी के रूप में खड़ा मुस्कुरा कर जो बता रहा है वही मैं लिखने जा रही हूँ। तो लीजिये मैं देख रही हूँ कि यहाँ एक ऐसी ज़िंदगी का पसारा है जो कभी मरी ही नहीं। जो सतत् रूप में समान रूप से ही व्याप्त है। श्रीबाबूजी का यह कथन मैं अब स्पष्ट पा रही हूँ कि ''मैंने केवल बड़ी एवं मुख्य ग्रन्थियों को ही अपनी Research में लिया है नहीं तो बेशुमार ग्रन्थियाँ हैं।'' तो भाई ऐसे समझ लीजिये कि जैसा किसी क्षेत्र की मुख्य-अवस्था आने तक न जाने कितने बदलाव आते हैं जिन्हें गिन पाना असंभव है। उस क्षेत्र की पूर्ण यात्रा होने पर जो अवस्था आती है वही उस क्षेत्र की परिपक्व-अवस्था यानी ज़िन्दगी होती है। इसलिये किसी भी क्षेत्र की हालत की अनुभूति का सेंक हमें मिलता है तो यही कहना पड़ेगा कि यह यहाँ की मुख्य ज़िन्दगी या अवस्था से ही सम्बन्धित है। इस तेरहवीं ग्रन्थि के पसारे में कशिश न होने पर भी अब तक की पाई हर दशा अपनी लय अवस्था के साथ स्वत: ही विलीन होकर अपने अलगत्व को खो बैठती है। यानी अब यह समझ में आ रहा है जो कि बाबूजी ने मुझे लिखा था कि ''वज़ह दशा की (कारण) और दशा साथ-साथ चलती है। लेकिन एक मुक़ाम आता है जहाँ दशा अपनी दैविक-वज़ह में विलीन हो जाती है। यानी यों कह लें कि यहाँ लय अवस्था भी लय हो जाती है और साक्षात्कार की दशा भी लय हो जाती है''। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि अहं-शब्द में प्रथम 'अ' शब्द और बाद का 'ह' लय होकर शेष बचता है मात्र बिन्दु, जिस 'कुछ नहीं है' को 'है' मानकर हमें बाबूजी सेन्टर-रीजन में प्रवेश देते हैं। अर्थात् अहं का भेद भी यहां स्पष्ट हो जाता है। उपरोक्त दशा के रूप में कि 'अ' का अर्थ है नहीं 'ह' का अर्थ है 'हम' शेष बचता है बिन्दु अर्थात् नहीं है हम बिन्दु के अतिरिक्त किन्तु इस बिन्दु (Identity) को भी संभाल लेते हैं मेरे बाबूजी, आगे अपने संकल्प की नाव में लेकर सेन्टर-रीजन में पैराव (Swimming) देने के लिये। श्रीबाबूजी द्वारा खोजे हुये ego के सोलह वृत्त इस क्षेत्र में विलीन हो जाते हैं। कबीर का ''सोलह शंख पै तकिया हमारो' की श्रेष्ठ अनुभूति का गान भी यहाँ आकर ही ऐसा बोल उठा होगा। यहाँ के पसारे की वास्तविकता को यों भी कहा जा सकता है कि यहाँ ज्ञान भी

अज्ञानी हो जाता है। इस तेरहवीं-ग्रन्थि का तो हवाला देखते ही बनता है, लिखते नहीं बनता है। इस क्षेत्र का पसारा क्या है मानो नव-शिशु की मासूमियत का पसारा है, नव-शिशु, जिसमें न अपने होने का भाव होता है और न अपने अस्तित्व की प्रतीति होती है। यदि नन्हें-शिशु की ओर हम ध्यान दें तो गीता में वर्णित इस श्रेष्ठ-अवस्था का ही वह जीता-जागता नमूना होता है कि ''गुण, गुण में ही बरतते हैं''। कभी वह स्वत: मुस्कुराता है तो माँ कहती है कि बय-माता ही उसे मुस्कुराना सिखा रही है। कभी चौंककर स्वत: रो उठता है। यशोदा माता भी सूरदास की भक्ति मई रचना में बोल उठी थी कि ''कबहुँक हरि मुस्काय परत हैं, कबहुँ अधर फरकावैं''। उसकी सारी प्रक्रियायें स्वत: ही होती हैं बस ऐसी ही विशुद्ध-अवस्था व्याप्त है इस क्षेत्र में। गुरूनानक जी की विस्मृत अवस्था का प्रतीक है यह तेरहवीं ग्रन्थि कि ''तेरा-तेरा कहते-कहते तो मैं तेरा (ईश्वर) हो चुका था फिर तेरह के आगे की गिनती कौन गिनता''। यह साँची गरिमा है इस क्षेत्र की। भला किस लेखिनी में साहस है जो बाल्यवत् परम-विशुद्ध अज्ञान की चरम-सीमा की अवस्था का वर्णन कर सके। श्री बाबूजी के कथनानुसार 'असल' हालत यही है मानव की श्रेष्ठ-स्तर की पहुँच की और आध्यात्मिकता की चरम-सीमा की। श्रीबाबूजी ने मुझे इस हालत पर पहुँचाकर ही मुझे पत्र में लिखा होगा कि ''तुम्हारी हालत क्या लिखूँ-देखो तो असलियत, छुओ तो असलियत। मानों असलियत ही का तुम रूप हो गई हो। मैं इतना ख़ुश हूँ कि मेरा दिल तुम्हें आशीष दे रहा है। तुम अंतिम-सत्य अर्थात् Ultimate की चौखट ज़रूर चूमोगी''।

आज उनकी यह दैविक-प्यार भरी आशीष ही उनकी एकमात्र इच्छा को पूर्ण कर रही है कि ''मेरे हर लेखन को, हर कथन को तुम आध्यात्मिक-क्षेत्र में दशाओं के रूप में अपने में उतार कर उसके अनुभव द्वारा ही हर रीजन, हर Point एवं अंतिम-सत्य तक का विवरण अपनी दिव्य-हालत के रूप में देना। मेरे नेत्र आज जल से भरे हुये सोच रहे हैं कि यह कैसी महत् हस्ती उतरी है कि अपना सब कुछ मुझमें उतार कर बस इतनी सी इच्छा की कि ''हर Point, हर क्षेत्र एवं हर रीजन, Seven Rings एवं भूमा के देश की दशाओं का पूर्ण वर्णन लिखना। ताकि कोई यह न कहे कि रामचन्द्र कहकर ही चला गया, करके न दिखाया। तुम एक ही सही अगर सम्पूर्ण यात्रा का वर्णन लिखोगी तो उन्हें पता लग जाएगा कि जो System एक को तैयार कर सकता है तो यह रास्ता समस्त के लिये खुल गया है''। लेकिन उनके चरणों में आज सिवाय असलियत के

चढ़ाने को और कुछ बचा ही नहीं है जो शेष का अवशेष (Identity) था उसे भी तो यहाँ उन्होंने अपने Divine संकल्प की नाव में स्थान दे दिया है ताकि भूमा के वैभव-केन्द्र सेन्टर-रीजन में Swimming दे सके। कौन समझ पायेगा उनके कथन का गहन रहस्य जब तक वे स्वयं इतने वर्षों के अन्तराल के बाद आज समक्ष में हर दशा को न फैलायें और लेखन के लिये शब्द न दें। मुझे लगता है कि शब्द हालत को नहीं छूते हैं बल्कि हालत ही शब्दों को स्पर्श से सम्पन्न बना रही है।

एक अचम्भा मैं यह पा रही हूँ कि जो यहाँ इस असलियत की हालत की दिव्य-गरिमा भी है और मेरे श्रीबाबूजी का दिव्य-गौरव भी है कि असल हालत वही है कि जिसकी असलियत कुछ न हो। ज्ञान की परिसमाप्ति तो अज्ञान है किन्तु कभी आपने सोचा है कि अज्ञान की परिसमाप्ति क्या है- समक्ष में व्याप्त असल-हालत। वास्तव में यह दशा ऐसी है कि जैसे सागर में डूबा हुआ आदमी, आँख खोले तो पानी, बन्द करे तो पानी, स्पर्श भी पानी अर्थात् असल हालत के सागर में डूबकर कभी उबर न पाना ही असल-हालत या अपना दैविक-वतन है। हाँ भूमा की चौखट पर माथा टेकने का अर्थ समझ पाना तो सूर्य को दीपक दिखाने के सदृश ही होगा किन्तु अपने बाबूजी की कृपा से ही मैंने अन्य पुस्तकों में इस अनुपम-क्षेत्र का वर्णन करने का प्रयास किया है क्योंकि असल-दशा के विराट सागर में लय हो जाना ही अन्त नहीं है बल्कि इससे उबरने पर हमारे समक्ष 'अनन्त की ओर' का पथ प्रशस्त हो जाता है। एक दैविक-रहस्य यह भी समस्त के हित स्पष्ट हो गया है कि असल-दशा से उबरने पर ही हम श्रीबाबूजी द्वारा बताये 'सत्य-पद' पर आसीन होते हैं। भला आप सुनेंगे कि कौन मुझे इस अनन्त एवं पथ-विहीन-पथ में ले गया था? इस अनन्त-फैलाव में जो Ultimate (भूमा) के वैभव का देश है वहाँ मेरे बाबूजी ही अपने दैविक-संकल्प में प्रवेश देकर Swimming कराते हुये ले गये थे। अब आप ही बतायें कि किस लेखिनी में इतना साहस होगा जो उनकी दिव्य गौरवमय-गरिमा के बारे में स्वयं एक शब्द भी लिख सके। मैं देख रही हूँ कि सत्य-पद पर प्रतिष्ठित होने से पहले ही ego के सोलह-वृत्त Divine में लय हो जाते हैं। परम् साक्षात्कार के साथ ही बाबूजी ने मुझे ईश्वरीय-शक्ति में गोता देकर निकालने के बाद सत्य-पद पर प्रतिष्ठित किया था किन्तु यह सारा ईश्वरीय-रहस्य तेरह ग्रन्थियों के विवरण सहित मालिक में विलीन हो जाता है।

भाई Divine साक्षात्कार से लेकर भूमा तक की यात्रा के सारे भेद समस्त के हित स्पष्ट करने हेतु ही जिनका अवतरण हुआ है वे अहं के सोलह वृत्तों को समाप्त करके 13 ग्रन्थियों की दिव्य गरिमा को हमारे में उतारते जाते हैं। आज इस पुस्तक के रूप में समस्त के समक्ष उन्होंने ही आदि से लेकर अंत तक का विवरण रखा है उनके बारे में भला उनकी यह बिटिया क्या लिख सकेगी। एक जो और दिव्य-गरिमा मेरे समक्ष में आई है उसे लिखकर ही मैं तेरहवीं-ग्रन्थि का विवरण पूर्ण करूँगी। सच तो यह है कि उनके प्रति लेखन में दिव्य-विभूति अर्थात् Divine Personality शब्द अब Fit नहीं बैठ रहा है। मैं देख रही हूँ कि, हर ग्रन्थि, हर Region एवं हर Point के मुख्य केन्द्र बिन्दु में आदि-स्पन्दन मौजूद है। जब हमारी मिलन की आंतरिक-तड़प (Craving) इस आदि-स्पन्दन को स्पर्श करती है तभी हमारी लेखनी पुकार उठती है कि तड़प अब खुद तड़प उठी है। जानते हैं क्यों? क्योंकि अनन्तता की बयार उसे छू जाती है। इसे ग्रन्थि का गौरव कहूँ अथवा श्री बाबूजी की दिव्य खोज का ही गौरव कहूँ कि जब बाबूजी ही हर केन्द्र के बिन्दु में प्रवेश दे देते हैं तब स्वत: ही तड़प उसमें विलीन हो जाती है। तब तेरहवीं ग्रन्थि में आदि-शक्ति के स्पन्दन की विलीनता पाकर मैंने बाबूजी को लिखा था कि ''तड़प को देखा तड़पता, प्यास ख़ुद को पी गई''। एक लाभ मैं यह भी देख रही हूँ कि तड़प की तड़प के स्पन्दन में विलीन होते ही मानों इस क्षेत्र की शक्ति भी हममें प्रवेश पा जाती है। पहले लिखी इस परम-दशा के बारे में वर्षों पहले की अनुभूति का अर्थ अब इस तेरहवीं-ग्रन्थि का विवरण लिखते समय ही समझ में आया है कि यह दशा इस ग्रन्थि की है। अब ज्ञान की परिसमाप्ति हो जाती है क्योंकि अनुभूति करने को अब कुछ रह नहीं जाता है।

इन्हें दिव्य-ग्रन्थियों का वर्णन कहूँ अथवा श्रीबाबूजी महाराज की दैविक-रिसर्च द्वारा सत्य-पद पर अभ्यासी को प्रतिष्ठित करने तक, अनुभव की गम्यता से परे, शब्दों की मुखरता से भी परे, दिव्य गतियों के आदि सौंदर्य एवं आदि-शक्ति के सोपान कहूँ? यह तो आपको ही बताना है।

उपसंहार

''अनन्त-दर्शन''

वास्तव में इस पुस्तक के लेखन का पूर्ण सारांश यही है कि अभ्यासी के जीवन के अल्प-काल में आध्यात्मिक-श्रेष्ठ-गतियों को अपनी प्राणाहुति-शक्ति द्वारा इच्छा-शक्ति से उतारने के लिये ही श्रीबाबूजी ने ईश्वर-प्राप्ति की राह में, ब्रम्ह-विद्या के गहन-भेदों को पूर्ण रूप से अपनी रिसर्च द्वारा उजागर किया है। श्री बाबूजी ने हर-रीजन की यात्रा को ईश्वरीय-प्रेम से भरकर कुछ इस तरह से सँवारा है, ताकि आगे अभ्यासी ईश्वरीय-विराट् (हिरण्यगर्भ) अथवा माइन्ड-रीजन में प्रवेश पाते हुये वहाँ की यात्रा को भी पा सके। ईश्वरीय-शक्ति की विशेषता का दर्शन पाते हुये वहाँ की लय अवस्था का अनुभव भी पा सके। उनका अभ्यासी ईश्वरीय देश का दैविक-नज़ारा भी पा सके इसके लिये उन्होंने उसे ईश्वरीय-धारा का प्रवाह अंतर में देते हुये, उस दिव्य-देश की यात्रा को भी प्रदान करके सहज मार्ग को अनुपम गौरव प्रदान किया है। इतना ही नहीं मुझे आज भी स्मरण है कि दिव्य-साक्षात्कार के साथ ही बाबूजी ने मुझे ईश्वरीय-शक्ति के मुख्य केन्द्र में गोता देकर सत्य-पद पर प्रतिष्ठित किया था। जानते हैं क्यों? क्योंकि बिना ईश्वरीय-शक्ति में गोता लगाये उनकी दिव्य-खोज सेन्टर-रीजन अर्थात् भूमा के वैभव के देश में पैराव नहीं मिल पाता है।

मैंने देखा कि प्राणीमात्र के प्रति उनके प्रेम का ही इन तेरह ग्रन्थियों के रूप में एक अनुपम दैविक उपहार है। इन दैविक-तेरह-ग्रन्थियों को मानों श्रेष्ठ-ईश्वरीय-गतियों के प्रसाद स्वरूप उन्होंने मानव के हित दिव्य-श्रंगार रुप में ही प्रदान किया है। वास्तविक बात तो यही है कि यह ग्रन्थियाँ नहीं है बल्कि दिव्य साक्षात्कार तक ले जाने के लिए बाबूजी द्वारा प्रसाद रूप में हमें दिये गये दैविक सोपान हैं। हर सोपान अपनी एक आध्यात्मिक-दशा की विशेषता प्रगट करता है। मैंने पाया कि इनमें दिव्य-साक्षात्कार से भी परे ईश्वरीय-मिलन तक की चार मुख्य एवं परम स्थितियों का पूर्ण विवरण है। इस पुस्तक के लेखन में मैं इसीलिये सफलता पा सकी हूँ कि उन्होंने मेरे समक्ष हर ग्रन्थि की दशा को फैला दिया है। कदाचित् यही कारण है कि यह विवरण पुस्तिका अनन्त की ओर तक की यात्रा में हमारे लिये ईश्वरीय कशिश का कार्य कर रही है। सामीप्यता की प्रिय स्थिति हमसे कहती है कि ''दूरी की बात भुलाकर ज़रा इस देश में इनके समीप तो आ तब तू दैविक वियोग की व्यथा भरी

शान्ति का प्रतीक हो जायेगी''। उधर सालोक्यता की मोहिनी गति हमसे कहने लगती कि ''तू दूसरों के देश में कैसे साँस ले रही है? यहाँ आ और देख कि उनका विशुद्ध-पसारा (ईश्वरीय-विराट्) ही तेरा साँचा देश है''। उधर सारूप्यता की एकाकार दशा हमें पुकार रही है कि अरे! तेरा वह रूप तो नश्वर है और अनेकता की छाप से भरा हुआ है- अब ज़रा अपने इस साँचे स्वरूप के आविर्भाव का दर्शन पा ले जो तुझे तेरी वास्तविक छवि में लय करके तेरे प्रियतम इष्ट (ईश्वर) से सह-युज्यता (योग) प्रदान कर देगा। इतना ही नहीं, वतन की वापसी की सुलभता भी प्रदान कर देगा जिसकी ओर बाबूजी ने हमें हमेशा संकेत दिया है।

आध्यात्मिक-ईश्वरीय-क्षेत्र में श्रीबाबूजी ने इन तेरह-ग्रन्थियों की रिसर्च करके मानों हमें ईश्वर-प्राप्ति तक के सोपान सुलभ कर दिये हैं। उनकी पुस्तक ''अनन्त की ओर'' में तेरह-ग्रन्थियों के विवरण को दिव्य-गतियों का अलौकिक वर्णन कहूँ या उनके द्वारा अभ्यासी को सत्य-पद पर प्रतिष्ठित करने तक के अनुभव की गम्यता से परे सोपान कहूँ।

मैंने देखा है कि दर्शन के इन तेरह सोपानों का वर्णन सत्य की इस स्पष्टता को उज्जवल कर देता है कि इस परम-दर्शन की महत्-गति का वर्णन मात्र Ignorance (अज्ञान) की सहज एवं शब्दों से परे भाषा द्वारा ही सम्भव हो सका है। दैविक-मूक भाषा ही गहन दैविक भेद का जेवर है जो इसे निखार कर समक्ष में प्रत्यक्ष कर देता है। मैंने तो यह सत्य भी उज्जवल पाया है कि श्री बाबूजी की सादगी की दिव्यता का साया इन तेरह-ग्रन्थियों की यात्रा को दिव्य-प्रकाश से प्रकाशित करता है। वास्तव में सादगी उनका नक़ाब नहीं थी यह धोखा तो लोगों ने अपने भ्रम के अंधेरे में ही रहकर पाया है। यदि हम सादगी की दैविक-परिभाषा जान पाते तो वाणी मूक हो जाती, होश ऐसा उड़ जाता कि फिर कभी वापस ही नहीं लौटता। श्री बाबूजी का कथन हमारे समक्ष इसका दिव्य-रहस्य स्पष्ट कर रहा है कि ''सादगी मासूमियत (Ignorance) की जान है जो 'अनन्त की ओर' की वास्तविक-दशा का संकेत है। मेरी समस्त के लिये यही प्रार्थना है कि उनका ध्यान अनन्त-दशा की ओर के परमानन्द की ओर आकर्षित हो जिससे मेरी इस पुस्तक ''दिव्य-ग्रन्थि दर्पण'', का लेखन धन्य हो जाये। ये तेरह ग्रन्थियाँ जो ईश्वरीय-सौंदर्य का प्रतीक हैं, सभी में दैविक-सौभाग्य के सितारे के सदृश चमक उठें यही मेरी प्रार्थना है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नः- 'मैं' की परिभाषा क्या है?

उत्तरः- Self के प्रति वास्तविक-सजगता का एहसास ही 'मैं' की वास्तविक परिभाषा है।

प्रश्नः- ईश्वर क्या है?

उत्तरः- जिस शक्ति द्वारा हमें उसे जानने की जागृति मिलती है वह प्रेरक-शक्ति ही ईश्वर है।

प्रश्नः- ईश्वरीय-देश की वास्तविक परिभाषा क्या है?

उत्तरः- अहं के भूल की अवस्था की दशा भी जहाँ, भूल की अवस्था में लय हो जाती है वही ईश्वरीय-देश है- जिसे बाबूजी ने मेरे पत्र में फ़नाये-फ़ना की हालत लिखा है।

प्रश्नः- ईश्वर-दर्शन क्या है?

उत्तरः- जहाँ ईश्वर के ख़्याल की भी गुज़र नहीं है, वही ईश्वर-दर्शन की हालत है।

प्रश्नः- आत्म-निवेदन (Submission) की दशा क्या है?

उत्तरः- अहं (Self) के पिघलने का एहसास ही वास्तविक आत्म-निवेदन की दशा है।

प्रश्नः- समर्पण क्या है?

उत्तरः- Divine की ओर से हमारे आत्म-निवेदन की स्वीकृति ही साँचा समर्पण है।

प्रश्नः- सांचा प्यार किसे कहते हैं?

उत्तरः- जिस प्यार की वर्षा Divine की ओर से हमें मिलती है वही साँचा प्यार है।

प्रश्नः- असलियत क्या है?

उत्तरः- अपने होने के भाव की दैविक-वास्तविकता ही असलियत है।

प्रश्न:- क्या Brighter World और महापार्षद की हालतें अलग-अलग हैं?

उत्तर:- दोनों की हालतें अलग-अलग हैं। Brighter World में पैराव मिलने पर हमें Identity का भी होश नहीं रहता है और महापार्षद की हालत में Identity स्वयं की पहचान भी भूल जाती है।

प्रश्न:- मन क्या है?

उत्तर:- जब रचना का प्रथम क्षोभ नीचे उतरा तो आदि-मन बन गया। उससे नीचे स्तर पर आने पर वह मानवीय-मन कहलाया।

प्रश्न:- श्री लालाजी सा. ने एक बार कहा था कि "बाबूजी हक़ीक़त का निचोड़ है" तो हक़ीक़त क्या है?

उत्तर:- हक़ीक़त तो मुख्य-उद्गम है।

प्रश्न:- सहज-मार्ग की क्या विशेषता है?

उत्तर:- सहज-मार्ग सादा, स्वाभाविक एवं मनुष्य को पूर्णरीत्या बदल देने वाला Divine मार्ग है इसमें अभ्यासी के रोम-रोम का हर मुक़ाम खुलना शुरू हो जाता है।

प्रश्न:- Moderation क्या है?

उत्तर:- जब हमारी कुल रहनी आध्यात्मिक-हालत से मिली-जुली रहती है तो दोनों पलड़े बराबर हो जाते हैं यही Moderation है।

प्रश्न:- ईश्वर को Mind से जाना जाता है या हृदय से?

उत्तर:- Mind से Mind को जाना जाता है, ईश्वर को नहीं। हृदय में 'उसका' आभास होता है। ईश्वर को Divinity से जाना जाता है।

ENGLISH TRANSTALTION

Q. What is the definition of 'I' ?

Ans. Feeling of alertness of the Real Self.

Q. What is God?

Ans. The Power from which we get alertness to know Him, is God.

Q. What is the real definition of Godly-Region?

Ans. Where the condition of forgetfulness of the 'I' gets laya in the state of Forgetfulness, is the Godly Region, Sri Babu Ji has explained this condition in my letter as 'Fanai-a-Fana.'

Q. What is God-Realization?

Ans. Where the thought of God does not exist is the real condition of God-Realization.

Q. What is the condition of Submission?

Ans. The feeling of melting the self, is the real condition of submission.

Q. What is Surrender?

Ans. Acceptance of submission by the Divine is real surrender.

Q. What is pure love?

Ans. Love, which is bestowed from Divine is pure love.

Q. What is Reality?

Ans. The Real Identity of Being.

Q. What is Real self?

Ans. A particle of Divine is real self.

Q. What is pure Renunciation?

Ans. Where there is neither purity,nor impurity. That is pure remunciation.

Q. Is the condition of brighter world and mahaparshad different from each other?

Ans. Yes, both the conditions are different from each other. After getting swimming in brighter world, there remaines no conciousness of identity. In the condition of Maha-Parishad, identity cannot identyfy Itself.

Q. What is Manas?

Ans. When first 'Khobh' came down for the creation; it created original Manas. When it came down to a lower level it was called human mind.

Q. Once Shri Lalaji Saheb said that Babuji is the essence of Reality. What is the Reality?

Ans. Reality is the Main source.

Q. What is the uniqueness in Sahaj Marg system?

Ans. Sahaj Marg system is the embodyment of purity Simplicity & Naturality and it brings complete transformation in abhyasi. This is pure Divine system. Every particle of abhyasi begins to open in this system.

Q. Can god be known through mind or heart?

Ans. God can not be known through mind. It can only be felt by heart & can only be known through divinity.

Q. What is Moderation?

Ans. When our living remains laya in spiritual condition, it is called the condition of moderation.

Kasturi Bahin

श्री बाबूजी महाराज का जन्म शताब्दी गीत

मनायेंगे सौंवा बरस ऐसा तेरा,
जहाँ में कहीं रह न जाये अंधेरा॥

1. खुशी से भरा आज खुशियों का दामन,
गया भूल पल को है खुद सत्य-अंतिम,
कि कण-कण में देखा उजाला है तेरा॥

2. झूमे प्रकृति है गया चौंक हर दिल,
लगे ऐसा मन को छुये तेरा आँचल,
मिले है हर आहट पै आभास तेरा॥

3. धरा ने ठिठक कर तेरा मुख जो देखा,
तो ऐसा लगे था वतन अपना देखा,
चुराया नज़र ने है एहसास तेरा॥

4. निगाहें ठहरती नहीं आज रूख पै,
क्यूँ बेबस है दीवानगी आज खुद पै,
खुदाई ने चूमा अदब आज तेरा॥

5. लगाया तिलक आदि-शक्ति ने उनको,
दिया लाला ने दिव्य-श्रंगार उनको,
मुबारक हो सौंवाँ बरस सबको तेरा॥

6. अजब मुस्कुराहट है अधरों पै ऐसे,
इनायत हुई दिव्य नज़रों की जैसे,
क़दम-बोसी चाहे करम आज तेरा॥

7. सदियों ने कैसे गुज़ारे हैं ये छन,
है फूले समाते नहीं आज ये मन,
वतन की सदा में बहे प्यार तेरा॥

8. जुबाँ कैसे बाबू का है राज़ खोले,
महा-पार्षद ने तेरे द्वार खोले,
समां था न हद थी, मकां था वो तेरा॥

9. 'संध्या' गले से लगायेंगे सबको,
उनकी दुआयें लुटायेंगे सबको,
है पलकों पै सौवें बरस का सबेरा॥
है युग को बदलता हुआ ये सबेरा॥

— कस्तूरी बहिन

SRI BABU JI MAHARAJ BIRTH CENTENARY SONG

O, Babu! We shall celebrate your centenary year with such a magnificence,
That the world may become free from the darkness of ignorance!

1. The 'Pleasure' has untreasured itself on the fragrant firmament,
Even the 'Ultimate' has forgotten itself for a moment !
The 'Light of Divinity' from each and every particle reflecting,
The 'Auspicious Morning' is, the 'Present Era' transforming.

2. 'Nature' dances with ecstacy and the heart thrilled with the joy of love,
It seems that the 'heart' Craves to have & touch of the love !
Even the slightest sound is, of your auspicious arrival reminding,
The 'Auspicious Morning' is, the Present Era transforming.

3. Stunned and startled, when the 'Earth' had at your divine face seen,
It appeared as if, it had, the 'centre' of the Ultimate seen!
O Babu! my eyes are, the divine touch of thy love realising,
The 'Auspicious Morning' is, the Present Era transforming!

4. The 'Eyes' fail to see at your radiant face continuously,
Why the madness in love, feels helpless itself so miserabely!
Today the Divinity itself is at your lotus-feet surrendering?
This 'Auspicious Morning' is, the Present Era transforming.

5. Today Adi-Shakti has put on His forehead the 'Tilak of Sanctity,
and Lala has adorned Him with the gracious beauty of Divinity!
O Babu! my greeting to all on your centenary year this morning,
This 'Auspicious Morning' is, the Present Era transforming.

6. Today a mystic smile is on the lips playing,
The Divinity has, as if, showered all its grace and blessings!
Today thy Blessings Crave to become free to bless all enchanting,
This 'Auspicious Morning' is, the Present Era transforming.

7. How much, for centuries, the Humanity has missed this day,
And our hearts are puffed up with blissful joy today!
Thy divine love is, in the 'Centre' of the Ultimate flowing,
This 'Auspicious Morning' is, the Present Era transforming.

8. How the Tongue can dare to disclose thy divine secret,
As the 'Maha-Parshad' has opened thy doors sacred!
Neither the 'atmosphere', nor the bounds, such was thy dwelling,
This 'Auspicious Morning' is, the Present Era transforming.

9. Says sandhya, we will embrace all with love whole-heartedly,
and shower upon everybody His blessings generously!
All 'Eyes' are, the morning of the centenary year welcoming,
This 'Auspicious Morning' is, the Present Era transforming.

—R.S. Kamthan